आधुनिक शोध त्रिवेणी

इतिहास और साहित्य में भारतीय समाज

(आधुनिक विभागीय शोध-पत्रिका)

आधुनिक विभाग

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान

(मानव संसाधन विकास मन्त्रालय, भारत सरकार के अधीन,
राष्ट्रिय मूल्याङ्कन प्रत्यायन परिषद् द्वारा 'ए'-श्रेणी में प्रत्यायित समविश्वविद्यालय)

श्री रघुनाथकीर्तिपरिसर, देवप्रयाग

2018

आधुनिक शोध त्रिवेणी

इतिहास और साहित्य में भारतीय समाज

2018

आधुनिक विभाग

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान

(मानव संसाधन विकास मन्त्रालय, भारत सरकार के अधीन,
राष्ट्रिय मूल्याङ्कन प्रत्यायन परिषद् द्वारा 'ए'-श्रेणी में प्रत्यायित समविश्वविद्यालय)

श्री रघुनाथकीर्तिपरिसर, देवप्रयाग

आधुनिक शोध त्रिवेणी

इतिहास और साहित्य में भारतीय समाज

प्रधान सम्पादक

प्रो. के.बी. सुब्बरायुडु

प्राचार्य

सम्पादक

डॉ. अरविन्द सिंह गौर

डॉ. वीरेन्द्र सिंह बर्त्वाल

पंकज कोटियाल

आधुनिक विभाग

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान

(मानव संसाधन विकास मन्त्रालय, भारत सरकार के अधीन,

राष्ट्रिय मूल्याङ्कन प्रत्यायन परिषद् द्वारा 'ए'-श्रेणी में प्रत्यायित समविश्वविद्यालय)

श्री रघुनाथकीर्तिपरिसर, देवप्रयाग

2018

प्रकाशक
प्राचार्य
राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान
(समविश्वविद्यालय)
श्री रघुनाथकीर्तिपरिसर, देवप्रयाग, पौडी-गढवाल-249301 (उत्तराखण्ड)
दूरभाष 01378-266028
ई मेल : srkcampus@gmail.com
वेबसाईट : www.srkcampus.org

© आधुनिक विभाग, श्री रघुनाथकीर्तिपरिसर, देवप्रयाग

प्रकाशन 2019

प्रथम संस्करण : 200 प्रतियां

ISBN : 978-81-87324-39-2

सह-वितरक
एपेक्स बुक्स पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स
5/21-ए, विजय नगर, दिल्ली-110009
दूरभाष : 07503180700

मुद्रक
डी.वी. प्रिंटर्स
97-यू.बी., जवाहर नगर, दिल्ली-110007
मो.: 9818279798, 9990279798

ॐ

आधुनिक शोध त्रिवेणी

श्री रघुनाथ कीर्ति परिसर में वर्ष 2017-18 आधुनिक विभाग द्वारा राष्ट्रीय संगोष्ठी आयोजित की गई, जिसका मूल विषय है- "भारतीय समाज का प्रतिबिंबन: ऐतिहासिक और साहित्यिक संदर्भ में"। आधुनिक विभाग में इतिहास, हिन्दी, अंग्रेजी तथा संगणक का अध्ययन होता है। भारतीय समाज में इन चारों विषयों का अध्ययन अध्यापन का प्रभाव प्रत्यक्ष रूप में है। इन चारों विषयों में इतिहास, हिन्दी भारतीय हैं और अंग्रेजी तथा संगणक यंत्राध्ययन वैदेशिक हैं। इस प्रकार स्वदेशी-विदेशी विषयों की ऐतिहासिक एवं साहित्यिक विशेषताएँ क्या हैं और भारतीय समाज में इनका प्रतिबिंबन किस प्रकार हो रहा है, यही इस संगोष्ठी का मुख्य उद्देश्य रहा है। इस उद्देश्य को इतिहास, हिंदी, अंग्रेजी, संगणक, शारीरिक शिक्षाशास्त्र इत्यादि विषयों के प्राध्यापक अपनी प्रतिभा तथा वैदुष्यपूर्ण लेख प्रस्तुत करके संगोष्ठी को सफल बनाए हैं। न केवल परिसर के प्राध्यापक अपितु बाहर से अनेक विश्वविद्यालय तथा महाविद्यालयों के भी विद्वानों ने इस संगोष्ठी में भाग लिया। अत: अच्छी तरह से प्रश्नोत्तर का सिलसिला चला। इन प्रतिभागियों के द्वारा प्रस्तुत शोध पत्रों का संकलन करके शोध पुस्तक के रूप में प्रकाशित करने का प्रयास विभाग के अध्यापकों द्वारा किया गया है। अत: हमारे आधुनिक विभाग के समस्त अध्यापक धन्यवाद के सुपात्र हैं। ये लोग इस प्रकार का कार्य प्रतिवर्ष करते रहें, यही मेरी शुभकामना है।

ॐ तत्सत् ॐ

-प्रो. के.बी. सुब्बरायुडु
प्राचार्य

संपादकीय

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान के श्री रघुनाथ कीर्ति परिसर, देवप्रयाग के आधुनिक विभागीय शोध पुस्तक 'आधुनिक शोध त्रिवेणी' का द्वितीय अंक आप लोगों तक पहुंचाकर हम गौरवान्वित हैं। इसके प्रकाशन में योगदान देने वाले समस्त महानुभावों का धन्यवाद ज्ञापित करते हुए हम उन विद्वानों और शोधार्थियों के विशेष आभारी हैं, जिन्होंने इसके लिए आलेख के रूप में सहयोग दिया है। 03 से 13 फरवरी, 2018 तक परिसर में आयोजित विभिन्न विभागों की संगोष्ठियों की सफलता से हम उत्साहित हैं। अन्य विभागों की संगोष्ठियों की तरह आधुनिक विभाग की संगोष्ठी में भी देश के विभिन्न भागों से विद्वान और शोधार्थी पत्रवाचन हेतु आए। 'भारतीय समाज का प्रतिबिम्बन : ऐतिहासिक एवं साहित्यिक सन्दर्भ में' विषय पर आयोजित संगोष्ठी में पत्रवाचकों एवं अन्य वक्ताओं ने अकाट्य तर्कों और प्रमाणों के साथ बताया कि समाज किस प्रकार सामाजिक संबंधों का जाल है। समाज मनुष्य के लिए ऑक्सीजन और भोजन की तरह अनिवार्य है। समाज और साहित्य का घनिष्ठतम तारतम्य है। पत्र वाचक विद्वानों ने हमें और हमारे विद्यार्थियों को बहुमूल्य ज्ञान की गंगा में पुण्य स्नान करवाया। इससे हमें आत्मबल मिला। विद्वानों ने हमें शोध के क्षेत्र में बहुत कुछ करने की प्रेरणा दी। हमें प्रतीत हुआ कि संगोष्ठी में प्रस्तुत ज्ञान को पुस्तक के रूप में समेटा जाए, ताकि अन्य कई जिज्ञासु लोग, शोधार्थी और विद्यार्थी इसका लाभ ले सकें। इसके लिए हमने पिछली बार की तरह प्रयास किया और पुस्तक प्रकाशन कार्य में सफल हो पाए। संस्थान के माननीय कुलपति प्रो. पी.एन. शास्त्री और हमारे परिसर के प्राचार्य प्रो. के.बी. सुब्बरायुडु जी ने इस कार्य में हमें जो आशीर्वाद दिया, इसके लिए उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना हम परम कर्तव्य समझते हैं। साथ ही परिसर के अनेक प्राध्यापकों और गैरशिक्षण कर्मचारियों ने इस कार्य में जो अमूल्य सहयोग दिया, उनका भी हम आभार प्रकट करते हैं।

शोध पुस्तक में निहित पत्रों को कसौटी पर कसने का प्रयास किया गया है, क्योंकि कोई भी शोध पुस्तक एक ज्ञान कोश होती है, परंतु यह बात भी सत्य है कि कोई भी ज्ञान अंतिम नहीं होता है। नित नए आविष्कार और अनुसंधान पुराने ज्ञान

को संशोधित करने का आधार बनते हैं। ऐसा इस पुस्तक में होना भी स्वाभाविक है। पुस्तक में वर्तनी इत्यादि की शुद्धता पर पूरा ध्यान देने और सामग्री को उपयोगी बनाने का प्रयास किया गया है। फिर भी कतिपय त्रुटियां हो सकती हैं। इसके लिए क्षमाप्रार्थी हैं। भविष्य में इसे और खरा बनाने का प्रयास किया जाएगा। आपके मार्गदर्शन एवं सुझावों की प्रतीक्षा रहेगी।

-डॉ. अरविन्द सिंह गौर
-डॉ. वीरेन्द्र सिंह वर्त्वाल
-पंकज कोटियाल

विषयानुक्रमणिका

पुरोवाक् - प्रो. के.बी. सुब्बरायुडु, प्राचार्य *iii*

सम्पादकीय *v*

हिन्दी संभाग

1. भारतीय नारी अतीत से वर्तमान तक —प्रो. बनमाली बिश्वाल 1

2. बौद्ध साहित्य में इतिहास और संस्कृति के सूत्र 23
-डॉ. प्रफुल्ल गड़पाल

3. दादा भाई नौरोजी का सामाजिक दृष्टिकोण 32
-डॉ अरविन्द सिंह गौर

4. ऐतिहासिक आलोक में गढ़वाली लोकगाथा साहित्य: संक्षिप्त दृष्टि 41
-डॉ. वीरेंद्र सिंह बर्त्वाल

5. उत्तराखण्ड का सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्वरूप : 47
एक ऐतिहासिक अवलोकन -डॉ० धनेन्द्र कुमार

6. उत्तराखण्ड आन्दोलन के आर्थिक कारकों में वन सम्पदा 54
की स्थिति का अवलोकन -डॉ० अर्चना डिमरी

7. सनातन संस्कृति पर बौद्ध एवं जैन सम्प्रदाय का प्रभाव 61
-श्री देवेश चन्द

8. हिन्दी साहित्य में नारी: उपन्यास के सन्दर्भ में 67
-डॉ० रेखा सिंह

9. हिंदी साहित्य में नारी -डॉ० सुनील कुमार 71

10. प्रमुख गढ़वाली कवियों के काव्य पर 83
भारतीय संस्कृति का प्रभाव —डॉ० मीना पंवार

11.	उत्तराखण्ड राज्य में लिंगानुपात का बदलता परिदृश्य	–डॉ० नीमा भेतवाल	89
12.	कामायनी महाकाव्य में नारी	–डॉ० सुभाष कुमार	96
13.	आचार्य कवि देव काव्य में कला-लालित्य का अनुशीलन	–डॉ० विमला चमोला	101
14.	छायावाद काव्य में नारी वर्णन	–संध्या गैरोला	106
15.	आधुनिक समाज के लिए कम्प्यूटर की अनिवार्यता	–डॉ. शशि बाला रावत	112
16.	हिन्दी साहित्य में संस्कृति	–डॉ. नितेश कुमार द्विवेदी	115

English Section

17.	Sanskrit the most suitable language for natural language processing	-Shri Pankaj Kotiyal	119
18.	R.K. Narayan's *Swami and Friends* : A Study of Indian Culture and Tradition	–Dr. Ashok Joshi	126
19.	Bertolt Brecht's approach to drama and theatre with special reference to the play The Caucasian Chalk Circle	– Dr. Preetam Singh	131
20.	Communist Disillusionment in *The Golden Notebook* of Doris Lessing	–Dr. Laxmi R. Chauhan	137
21.	Omprakash Valmiki's *Joothan :* A Cultural Study of a Dalit's Life	–Dr. Dhanesh M. Bartwal	143

✦✦✦

भारतीय नारी अतीत से वर्तमान तक
(संस्कृतवाङ्मय के विशेष सन्दर्भ में)

-प्रो. बनमाली बिश्वाल

सम्पूर्ण भारतीय-वाङ्मय का आकलन करें तो वहाँ भारतीय नारियों का एक प्रतिष्ठित एवं उदात्त स्वरूप दृग्गोचर होता है। वैदिक साहित्य, उपनिषत्साहित्य, पौराणिक साहित्य, लौकिक संस्कृत साहित्य (जैसे काव्य, महाकाव्य, कथा, उपन्यास, नाटकादि) के साथ साथ आधुनिक संस्कृत एवं हिन्दी आदि भारतीय साहित्य में भी नारीप्रशस्ति मुखरित है। उपर्युक्त कालखण्ड के अनुसार यहाँ प्रस्तुत प्रसंग में क्रमशः कुछ विचार प्रस्तुत है-

वैदिक साहित्य- ऋग्वेद में पतिप्रिया पत्नी से ईश्वर की तुलना की गई है और कहा गया है- अनवद्या पतिजुष्टेव नारी।[1] न केवल वेदाध्ययन में अपितु यज्ञादि कर्म में भी नारी ब्रह्मा-पद को सुशोभित करने का प्रमाण वेद में उपलब्ध है। ऋग्वेद में ही स्त्री को यज्ञ में ब्रह्मा बनने का अधिकार प्राप्त है।[2] ऋग्वेदकालीन भारत में नारी को घर में विशेष अधिकार प्राप्त था। अतः संहिताओं में स्त्री को ही घर कहा गया है।[3] परिवार में ही नहीं किन्तु समूचे समाज में नारी साम्राज्ञी पद की अधिकारिणी होती है- ऐसा वर्णन अथर्ववेद में देखा जा सकता है।

वस्तुतः अथर्ववेद में घर में नारी के आधिपत्य को बहुधा स्वीकृति मिली है। वहाँ कहा गया है कि पतिगृह में वधू दासी बनकर नहीं किन्तु साम्राज्ञी बनकर आती है- त्वं साम्राज्ञ्येधि पत्युरस्तं परेत्य।[4] केवल पति पर ही नहीं वह सास, ससुर, ननद, देवर सभी की साम्राज्ञी बनती है। अथर्ववेद के एक मन्त्र में कहा गया है- साम्राज्ञी श्वशुरे भव, साम्राज्ञी श्वश्र्वां भव, ननन्दरि साम्राज्ञी भव, साम्राज्ञी अधिदेवृषु।[5] अथर्ववेद के अनुसार सभी याज्ञिक कार्यों में पत्नी की उपस्थिति आवश्यक होती है और

---

1. ऋग्वेद - 1.7.3.3
2. ऋग्वेद - 8.33.19
3. जायेदस्तम् - ऋग्वेद -1.7.3
4. अथर्ववेद - 14.1.43
5. ऋग्वेद - 10.85.46., अथर्व - 14.1.44

अपत्नीक यज्ञ का अधिकारी नहीं है- अयज्ञो वा एष यो अपत्नीकः।[1]

अथर्ववेद में स्त्रियों की शूरता की भी चर्चा है। स्त्रियां अजेय एवं अधृष्य होती थी। यथा इन्द्राणी का ऐसा रूप वहाँ वर्णित है। इन्द्राण्ये तु प्रथमा अजिता अमुषिता पुरः।[2] अथर्ववेद में स्त्रियों के पुनर्विवाह एवं विधवा-विवाह की भी चर्चा है। पुनर्विवाहवाली स्त्री को पुनर्भु कहा गया है- समालोको भवति पुनर्भुवपिरः पतिः।[3]

शतपथ ब्राह्मण में पति को स्त्री की प्रतिष्ठा कहा गया है- पत्यो ह्येव स्त्रियै प्रतिष्ठा।[4] बशिष्ठ धर्मसूत्र में माता को उपाध्याय आचार्य एवं पिता से भी बढ कर कहा गया है -

उपाध्यायाद्दशाचार्यः आचार्याणां शतं पिता।
पितुर्दशशतं माता गौरवेणातिरिच्यते।।[5]

स्मृतिग्रन्थों में विशेष कर मनुस्मृति में उपलब्ध यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।[6] जैसा समुद्घोष नारीविमर्श के प्रसङ्ग में सम्पूर्ण विश्व को चमत्कृत करता है। मनु का मानना है कि जिस घर में पति पत्नी से सन्तुष्ट रहता है और पत्नी पति से वहाँ कल्याण होना तय है-

सन्तुष्टो भार्यया भर्ता भर्त्रा भार्या तथैव च।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रूवम्।।[7]

घर में स्त्री की उपस्थिति कितना सुखद है यह तथ्य मनु के इस वक्तव्य से समझा जा सकता है। मनु का मानना है कि भोजन करते समय स्त्री को देख लेने मात्र से खाद्य का स्वाद द्विगुणित हौ जाता है। अगर स्त्री परिवेषण करने लगती तो स्वाद चार गुण बढ़ जाता है। और अगर स्त्री साथ में भोजन करती तो स्वाद आठ गुणा बढ़ जाता है-

दर्शने द्विगुणं स्वादु परिवेषे चतुर्गुणम्।
सहभोजे चाष्टगुणमित्येतन्मनुरब्रवीत्।।[8]

---

1. अथर्व - 2.2.2.6
2. अथर्ववेद - 1.27.4
3. अथर्ववेद - 9.5.28
4. शतपथ ब्राह्मण 2.6.2.14
5. वशिष्ठ धर्मसूत्र - 13.48
6. मनुस्मृति - 3.56
7. मनुस्मृति - 3.60
8. मनुस्मृति - 3.60

उपनिषत्-साहित्य- तैत्तिरीयोपनिषद् में पितृदेवो भव से पहले मातृदेवो भव कहा गया है।[1] इससे तत्कालीन नारीप्राधान्य की स्थिति समझ में आती है। भगवान् की सर्वव्यापकता को व्यक्त करने के लिये श्वेताश्वतरोपनिषद् में ईश्वर को सभी प्राणियों में सक्रिय कहते हुये सर्वप्रथम स्त्री का ही नामरूप स्मरण किया गया है-

त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी।
त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः॥

इससे आर्य नारी-भावना की दीर्घकालीन दृढता व्यक्त होती है।[2]

उपनिषदों में विदुषी नारियों की चर्चा आती है। बृहदारण्यकोपनिषद् में विदुषी गार्गी याज्ञवल्क्य से ब्रह्मविषयक प्रश्न करती है। याज्ञवल्क्य की पत्नी मैत्रेयी भी उच्च कोटि की विदुषी थी जो मुक्तिविषयक ज्ञान में रुचि रखती थी। ऋग्वेद के कुछ सूक्तों में ऋषिकाओं का भी वर्णन मिलता है जो इस प्रकार है - कक्षावती, घोषा (ऋग्वेद 10. 31. 40), लोपामुद्रा (ऋग्वेद 1. 179. 1-2), अपाला (ऋग्वेद 1. 179. 1-2), सूर्या - (ऋग्वेद 1. 179. 1-2), इन्द्राणी (ऋग्वेद 10.75), शची (ऋग्वेद 10.105), सार्पराज्ञी (ऋग्वेद 10.109), विश्ववारा (ऋग्वेद 5.28), बृहदारण्यकोपनिषद् की इन ऋषिकाओं का नाम बृहद्देवता में प्राप्त होता है-

घोषा गोधा विश्ववारा अपातो निषन्निषद्/
ब्रह्मजाया जुहुर्नाम अगस्त्यस्य स्वसा दितिः।
इन्द्राणी चेन्द्रमाता च सरमा रोशोर्वशी।/
लोपामुद्रा च नद्यश्च यमी नारी च शाश्वती।
श्रीर्लाक्षा सार्पराज्ञी वाक् श्रद्धा मेधा च दक्षिणा।/
रात्री सूर्या च सावित्री ब्रह्मवादिन्य ईरिताः॥[3]

इस से सिद्ध होता है कि नारियों का शिक्षाग्रहण में पूर्ण अधिकार था।

पौराणिक साहित्य - पुराणों में 16 प्रकार की माताओं का वर्णन है। ब्रह्मवैवर्तपुराण में इन षोडश माताओं का परिगणन हुआ है जो इस प्रकार है -

स्तनदात्री गर्भदात्री भक्ष्यधात्री गुरुप्रिया।
अभीष्टदेवपत्नी च पितुः पत्नी च कन्यकाः॥

---

1. तैत्तिरीयोपनिषद् - 1.11.2
2. श्वेताश्तरोपनिषद् - 4.3
3. बृहद्देवता - 2.82-84

सगर्भकन्याभगिनी पुत्रपत्नी प्रियाप्रसूः/
मातुर्माता पितुर्माता सोदरस्य प्रिया तथा॥

मातुः पितुश्च भगिनी मातुलानी तथैव च।
जनानां वेदविहिताः मातरः षोडश स्मृताः॥[1]

पुराणों में विशेष करके महाभारत (शान्तिपर्व) एवं ब्रह्मवैवर्तपुराण में कहा गया है कि नारी (चाहे माता हो या गृहिणी) के बिना गृह अरण्य जैसा है –

यस्य माता गृहे नास्ति गृहिणी वा सुशोभिता।
अरण्यं तेन गन्तव्यं यथारण्यं तथा गृहम्॥[2]

उसी ब्रह्मवैवर्तपुराण में पुनः कहा गया है कि भार्या की उपेक्षा के कारण उसके अभिशाप से नरक हो सकता है–

अनपत्यां च युवतीं कुलजां च पतिव्रताम्/
त्यक्त्वा भवेयुः संन्यासी ब्रह्मचारी यतीति वा।

वाणिज्ये वा प्रवासे वा चिरं दूरं प्रयाति यः।
तीर्थे वा तापसे वापि मोक्षार्थं जन्म खण्डितुम्॥

न मोक्षस्तस्य भवति धर्मस्य स्खलनं ध्रुवम्/
अभिशापेन भार्याया नरकं च परत्र च॥[3]

उसी ब्रह्मवैवर्तपुराण में यह भी कहा गया है कि स्त्री को प्राधान्य देने के लिये राधा का नाम पहले उच्चारित किया जाता है –

आदौ राधां समुच्चार्य पश्चात्कृष्णं विदुर्बुधाः।
निमित्तमस्य मां भक्तं वद भक्तजनप्रिय॥

गरीयसी त्रिजगतां माता शतगुणैः पितुः।
राधाकृष्णेति गौरीशेत्येवं शब्दः श्रुतौ श्रुतः॥[4]

प्राचीन ऐतिहासिकसाहित्य और पौराणिकसाहित्य तथा रामायण और महाभारत–काल में स्त्रियों को स्वयंवर का अधिकार था। रामायण में सीता एवं महाभारत में सावित्री, दमयन्ती एवं द्रौपदी इसका उदाहरण है।

महाभारत में माता को पिता तथा गुरु से श्रेष्ठ गुरु माना गया है –

---

1. ब्रह्मवैवर्तपुराण (गणपतिखण्ड) – 15.41–43
2. महाभारत – (शान्तिपर्व) एवं ब्रह्मवैवर्तपुराण प्रकृतिखण्डः 59.12
3. ब्रह्मवैवर्तपुराण (श्रीकृष्णजन्मखण्ड) – 113.6–8
4. ब्रह्मवैवर्तपुराण (श्रीकृष्णजन्मखण्ड) – 52.34

नास्ति मातृसमा छाया नास्ति मातृसमा गतिः।
नास्ति मातृसमो गुरुः ....॥[1]

उसी प्रकार महाभारत में यह भी कहा गया है कि माँ को श्रेष्ठ त्राण कहा गया जो सब से प्रिय होती है –

नास्ति मातृसमं त्राणं नास्ति मातृसमा प्रिया।[2]

पितृ–ऋण से मुक्ति के लिये सन्तान तो माता ही दे सकती है। अत एव महाभारत में पत्नी को पति का सब से अच्छा बन्धु कहा गया है –

नास्ति भार्यासमो बन्धुः नास्ति भार्यासमा गतिः।
नास्ति भार्या समो लोके सहायो धर्मसंग्रहे॥[3]

महाभारत में ही पत्नी के विना घर को अरण्य करार दिया गया है –

गृहं तु गृहिणीहीनमरण्यसदृशं मतम्। ....गृहिणी गृहमुच्यते।[4]

महाभारतकालीन पत्नियां पति का परम सम्मान करती थी। द्रौपदी ने पांच पतियों की सेवा की तो गान्धारी ने पति के अन्धा होने के कारण आँख पर पट्टी बांध रखी।

लौकिक साहित्य– सम्पूर्ण लौकिक साहित्य में नारी–स्वरूप का उदात्त चित्रण देखने को मिलता है इसकी प्रासंगिकता आज के युग में सर्वथा है। अत्यन्त संक्षिप्त इस आलेख में सभी कवियों को समेटना असम्भव है। अतः प्रतिनिधि कवि के रूप में संस्कृत साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवि कालिदास के ही विशेष सन्दर्भ में कुछ तथ्य रखना चाहता हूँ।

नारी के वारे में कालिदास की विचारधारा अत्यन्त प्रगतिशील दिखाई देती है। उसकी नारी बाला है, षोडशी है, पत्नी है, माँ है आराध्य है और विश्वकल्याणकारिणी है। उसकी नायिकाएं मनसा, वाचा, कर्मणा पति या प्रियतम को समर्पित रहती है। कालिदास की पतिव्रता नायिकाएं चरित्र पर शंका होने पर जीने की अपेक्षा मर जाना पसंद करती हैं। रघुवंश में सीता यह कहते हुये धरित्री में समा जाती है –

वाङ्मनःकर्मभिः पत्यौ व्यभिचारो यथा न मे।
तथा विश्म्भरे देवि मामन्तर्धातुमर्हसि॥[5]

---

1. महाभारत (शान्तिपर्व) 342.18, 131.16
2. महाभारत (शान्तिपर्व) 266.32
3. महाभारत (शान्तिपर्व) 144.16
4. महाभारत (शान्तिपर्व) 144.6
5. रघुवंशम् – 8.81

उसी प्रकार शकुन्तला भी दुष्यन्तद्वारा लाञ्छित होने पर कहती –भगवति वसुधे देहि मे विवरम्।[1] रघुवंश का अज इन्दुमती को 'गृहिणी सचिवः सखी मिथः प्रियशिष्या ललितकलाविधौ'[2] कहकर सम्बोधन करते हैं। इससे कालिदास की नारीदृष्टि स्पष्ट संकेतित है। कालिदास की दृष्टि में नारी अति बुद्धिमती है। अशिक्षित होने पर भी वह चालाक होती है– 'स्त्रीणामशिक्षितपटुत्वम्'[3] या फिर उनके स्त्रीपात्रों में प्रत्युत्पन्नमतिः होने की योग्यता होती हे– 'प्रत्युत्पन्नमति स्त्रैणं यदुच्यते'[4]। चतुर होनेके कारण स्त्रियां अपने स्वार्थसिद्धि के लिए विषयी पुरुषों को फांस लेती है– एवमादिभिरात्मकार्यनिवर्तिनीभिर–नृतमयवाङ्मधुभिराकृष्यन्ते विषयिणः[5] कालिदास प्रौढ़विवाह के पक्ष में हैः। कालिदास यद्यपि गान्धर्वविवाह का समर्थन करते हैं। फिर भी वे सलाह देते हैं कि स्त्रियों को अच्छी तरह परीक्षा करके ही ऐसा कदम उठाना चाहिये–

अतः परीक्ष्य कर्तव्यं विशशात्रु सभ्गतः रहः।
अज्ञातहृदयेष्वेवं वैरीभवति सौहृद्यम्।[6]

कालिदास की नायिकाओं के व्यक्तित्व विनयशीलता के साथ साभिमान का मणिकाञ्चन योग है। दुष्यन्त जैसे ही स्त्रीजाति पर दोषारोपण करते हुये कहते हैं– स्त्रीणामशिक्षितपटुत्वं दोषयन्ति – तो शकुन्तला उन्हें अनार्य शब्द से संबोधन करती है– अनार्य आत्मनो हृदयानुमानेन पश्यसि।[7]

कालिदासकालीन भारत में स्त्रीशिक्षा का प्रचलन था। स्त्रियां नृत्य, सङ्गीत, चित्रकला, नाट्यकलाओं में निपुण होती थीं मालविका भी नृत्यकला में निपुणा थी। कमल–पत्र में दुष्यन्त को प्रेमपत्र लिखती है– तव न जाने हृदयम्।[8] कालिदास मानते हैं कि स्त्रियां स्वभावतः निपुण होती हैं– 'निसर्गनिपुणाः स्त्रियः'[9]। वस्तुतः कालिदास का स्त्रीशिक्षाविषयक दृष्टिकोण अत्यन्त उदार रहा। कालिदास के लिये कन्या–जन्म पुत्रजन्म जैसा आनन्दकर रहा है। कालिदास ने कुमारसम्भव में शिव के मुख से पार्वती के लिये– अद्य प्रभृत्यवनताङ्गि तवास्मि दासः[10] कह कर नारी–जाति का सम्मान

1. अभिज्ञान–शाकुन्तलम्, कालिदास ग्रन्थावली, भाग–2, पृ. 444
2. रघुवंशम् – 8.67
3. अभिज्ञान–शाकुन्तलम् 4.22
4. अभिज्ञान–शाकुन्तलम्, पञ्चम अंक, कालिदास ग्रन्थावली, भाग–2, पृ. 442
5. अभिज्ञान–शाकुन्तलम्, पञ्चम अंक, कालिदास ग्रन्थावली, भाग–2, पृ. 442
6. अभिज्ञान–शाकुन्तलम् 2.25
7. अभिज्ञान–शाकुन्तलम्, पञ्चम अंक, कालिदास ग्रन्थावली, भाग–2, पृ. 444
8. अभिज्ञान–शाकुन्तलम् 3.15
9. मालविकाग्निमित्रम् 3.3.4
10. कुमारसम्भवम् – 5.86

किया। इन उदाहरणों के माध्यम से नारीशक्ति का प्रशस्तिगान किया गया है।

आधुनिक-संस्कृत-साहित्य- आधुनिक-संस्कृत-साहित्य में भी नारी का स्थान कहीं कम नहीं आंका गया है। पर चूँकि नारी की जीवनशैली में काफी परिवर्तन आ चुके हैं, अतः साहित्य में भी परिवर्तन आना स्वाभाविक है।

परिवर्तन प्रकृति का नियम है। उसके प्रभाव से साहित्य या साहित्यकार अछूता कैसे रह सकता है?

प्राचीन संस्कृत-साहित्य में सर्वत्र आदर्शात्मक प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। किन्तु आधुनिक संस्कृत-साहित्य में कवि आदर्श की स्थापना द्वन्द्व के परिप्रेक्ष्य में करता है। समकालिक साहित्य में नारियों की विभिन्न समस्यायें, जैसे- सामाजिक भेदभाव, यौन-उत्पीड़न, यौन-हिंसा, घरेलू हिंसा, लैंगिक असमानता आदि पर बल दिया जा रहा है।

इसी पृष्ठभूमि के साथ प्रस्तुत आलेख में जगन्नाथ पाठक, राधावल्लभ त्रिपाठी, राजेन्द्र मिश्र, हरेकृष्ण मेहेर, हर्षदेव, माधव, रमाकान्त शुक्ल, बनमाली बिश्वाल, भास्कराचार्य त्रिपाठी, हरिदत्त शर्मा, इच्छाराम द्विवेदी, प्रफुल्ल कुमार मिश्र, सदाशिव प्रहराज, प्रमोद कुमार नायक, रवीन्द्र कुमार पण्डा, प्रमोद चन्द्र मिश्र, नारायण दाश आदि कुछ प्रमुख संस्कृत-कवियों की कविताओं से उदाहरण प्रस्तुत किये जायेंगे।

हर्षदेव माधव-हर्षदेव माधव अपने नये प्रयोगों के लिए जाने जाते हैं। वेसाम्प्रतिक नारीपीड़ा को कुछ इस तरह उजागर करते हैं- स्नानगृहं गत्वा/ गृह-क्लेशक्लान्ता वधूः

निःशब्दं रोदिति।/तदा स्नानगृहं/तस्याः पितृगृहं भवति।[1]

विवाह के पश्चात् हर स्त्री को अपने ससुराल में जाना होता है और अपने को एक नये परिवेश में ढालना होता है। कहीं शारीरिक तो कहीं मानसिक या फिर भावनात्मक पीड़ाओं से साक्षात्कार होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। पर उन पीड़ाओं की अभिव्यक्ति तो अपनों के पास ही सम्भव है जो ससुराल में प्रायः दुर्लभ है। तब दूसरों से छिपा-छिपा कर रोने के लिए एक स्थान का तलाश होना स्वाभाविक है जो स्नानगृह के रूपमें सहजलभ्य है। वस्तुतः कवि यहाँ अति संक्षेप में बहुत बड़ी बात कर जाते हैं।

समाज में वेश्याओं की स्थिति दयनीय हो जाती है। वह स्थिति कवि से छिपी नहीं है। वासनायूप में बँधी वह कष्ट तो पाती है पर मर नहीं सकती।

---

1. कणक्या क्षिप्तं माणिक्यनूपुरम्, पृ.49

वासनायूपे बद्धा सा दूयते किन्तु न हन्यते।[1]

पुरुषों द्वारा पीड़ित होना नारी की परिभाषा बन गई है। नारी वह है जो किसी राम से त्यजा गया, किसी नल से निर्वासित, किसी दुष्यन्त से वञ्चित या फिर किसी हरिश्चन्द्र द्वारा छोड़ी गई हो

केनापि रामेण त्यक्ता केनापि नलेन निर्वासिता।
केनापि दुष्यन्तेन वञ्चिता केनापि हरिश्चन्द्रेण विसृष्टा।[2]

भास्कराचार्य त्रिपाठी – भास्कराचार्य त्रिपाठी की चिन्ता है कि आज ऐसा समय आ गया है कि पौरव यानि दुष्यन्त विनय की रक्षा नहीं करता। कवि की इस उक्ति में कालिदास की उक्ति (क इह) पूर्वपीठिका के रूप में अनायास स्मरण हो आता है।

आगतः खलु कालः कोयम्/पौरवो रक्षति नहि विनयम्।[3]

हरिदत्त शर्मा – हरिदत्त शर्मा पतति दध्नेद्यापि सीता इस कविता में वर्तमान युग में नारियों की स्थिति का विमर्श इस प्रकार करते हैं। रामायणकालीन सीता की अग्निपरीक्षा आज भी आलोचना का विषय है। कवि का मानना है कि आज पग – पग पर नारी जलाई जा रही है शारीरिक एवं मानसिक स्तर पर

कथं कथमपि निगडिता सा परिणयस्य पवित्रपाशे
कयापि कापि प्रताडिता परिपीडिता श्वश्रूकाशे।

पितृसमैः श्वशुरैर्हृता सा कापि रोदिति बहिर्नीता/
पतति दध्नेद्यापि सीता।[4]

कन्यासन्तान की अवहेलना भी चिन्ता का विषय है। कवि इस समस्या का चित्रण इस प्रकार करता है –

श्रुतं कन्याजन्म पितृभिर्मन्यते नहि हर्षवेला
नोत्सवो नृत्यं न वाद्यं प्राङ्गणे हेला न खेला
सुता जाता वा समस्या घोरचिन्ता वा प्रणीता।[5]

---

1. वेश्या, भावस्थिराणि
2. भावस्थिराणि
3. भास्कराचार्य त्रिपाठी
4. पतति दध्नेद्यापि सीता, हरिदत्त शर्मा
5. वहीं

राधावल्लभ त्रिपाठी- राधावल्लभ त्रिपाठी ने सतीप्रथा पर व्यङ्ग्य करते हुये लिखा है कि मनुस्मृति (3.56) का वचन विपरीतगामी दीखता है जहाँ कहा गया था यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः। पर आज वस्तुस्थिति सर्वथा भिन्न है। आज सीताओं का दाह इस प्रकार हो रहा है मानो इसी से राष्ट्र को अन्न, जल, बल सब कुछ प्राप्त हो सकता है-

यत्र नार्यस्तु दह्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।/
अन्नं जलं बलं राष्ट्रे सीतादाहेन जायते।[1]

इच्छाराम द्विवेदी प्रणव ने भ्रूणहत्या पर व्यङ्ग्य कसते हुये लिखा है -

गर्भाधानक्षणपरिचये भारतीया रमण्यः।/
शीघ्रं गत्वा जठरभरदं शैशवं घातयन्ति।[2]

क्षणिक परिचय से गर्भाधान होना अवैध सम्बन्ध का द्योतक है जिसकी परिणति सन्तानोत्पत्ति से नहीं बल्कि भ्रूणहत्या से गतार्थ होता है। इस में कालविलम्ब असह्य एवं घातक है। अतः शीघ्रं गत्वा की सार्थकता है।

जगन्नाथ पाठक - डा. पाठकजी की व्यंग्योक्ति से स्पष्ट हो जाता है कि वे आज की सामाजिक समस्याओं से कितने व्यथित हैं। नारी-असुरक्षा-परक उनकी इस व्यथा का एक झलक अधोलिखित पद्य में देखा जा सकता है -

परितो दशाननेषु स्वस्वावसरं प्रतीक्षमाणेषु।
सीतां रक्षितुमेका लक्ष्मणरेखा कियत्प्रभवेत्।।[3]

कवि का मानना है कि रामायणकाल में एक ही दशानन (रावण) मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम को त्रस्त करने के लिए पर्याप्त था पर आज तो अनेकों दसाननों के बीच सीता की दुर्दशा अनुमान-सापेक्ष्य है। लक्ष्मणरेखा जब एक सीता की रक्षा करने में असमर्थ रही तो चारों तरफ अपने-अपने अवसरों की प्रतीक्षा में बैठे रावणों से सीता को बचाने में लक्ष्मणरेखा किस प्रकार समर्थ हो सकती है!

कवि श्री हरेकृष्ण मेहेर तो नारी को नारी का शत्रु मानते हैं। उनका मानना है कि यौतुकहत्या में पति, श्वशुर एवं देवर की अपेक्षा सास, ननद आदि अधिक सक्रिय या कारण होती हैं। कवि की भाषा में -

---

1. सन्धानम्, पृ. 59, राधावल्लभ त्रिपाठी
2. दूतप्रतिवचनम् 31.21, इच्छाराम द्वेदी
3. जगन्नाथसुभाषितम्, भाग - 1, जगन्नाथपाठक, राष्ट्रियसंस्कृत - संस्थान, नईदिल्ली - 58, 2011

नारी एव नारीणां हन्त्री/
कम्पते यता शम्पापातिन्या लोकहृदयतन्त्री
परिणयवेदिकायां युवत्यः/
यौतुकज्वालायामार्जववत्यः वलीभवन्ति विवाहिताः
तथैव सपारुष्यं बहुदूरवाहिता।[1]

रमाकान्त शुक्ल- कविश्री रमाकान्त शुक्ल अपनी प्रसिद्ध कविता रौति ते भारत के एक पद्य में साम्प्रतिक यौतुक-समस्या की ओर ध्यानाकर्षण करते हुये मानवरूपी राक्षसों द्वारा किया जा रहा वधू-दहन की ओर संकेत कर कहते हैं -

यौतुकप्रेप्सुभिर्लोलुपैर्निन्दितैः/मर्त्यरूपे स्थितैः राक्षसैः कोटिकैः।
दह्यमाना वधूर्वीक्ष्य दुःखेन हा/रौति ते भारतम्रौति ते भारतम्।[2]

कवि अपनी इस कविता में स्त्रीविमर्श बिन्दु पर अपने विचारों को आगे भी ले जाते हैं। देहव्यापार में व्याप्त नारियों की पारवश्य एवं दारिर्द्य-गाथा अधोलिखित पद्य में चित्रित है -

देहपण्याजिरे नूपुराकर्णनैः/पारवश्यांकितैर्नृत्यकृत्यैस्तथा।
येन दारिर्द्य-गाथोच्चकैर्गीयते/तद्वयथापूरितं रौति ते भारतम्।।[3]

एकं सद्बहुधा विलोक्यते भारतम् कविता में भी कवि स्त्रीविमर्श पर केन्द्रित दीखता है और वधू-दहन-समस्या को उठाता है -

क्वापि भवति कुलवधूदाहपापं यदा/
रक्ष्यभक्षणं दुर्बलघातोवायदा।

क्वापि भवति यदि हिंसा क्रीडादुःखदा/
रोरुदीति करुणं सकलं मे भारतम्।[4]

इस संग्रह में 'ब्रूहि जगन्नाथ स्वामिन्'! शीर्षक से अन्य एक कविता में डा. शुक्ल ने जगन्नाथ जी से साम्प्रतिक विभिन्न सामाजिक समस्याओं से सम्बद्ध कई प्रश्न करता है। इसी कविता के एक पद्य में कवि कहता है कि आज तेरे भक्तजनों के द्वारा नारियां भी नहीं पूजी जाती हैं। अर्थात् यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः, यह अवधारणा भी समाप्त हो रही है। हे प्रभो! तुम अपने इस जगत् की कौन-कौन सी

---

1. कविता - महिला, हरेकृष्ण मेहेर
2. रौति ते भारतम्, भारतजनताऽहम्, रमाकान्त शुक्ल
3. रौति ते भारतम्, भारतजनताऽहम्
4. एकं सद्बहुधा विलोक्यते, भारतजनताऽहम्

वीभत्सता दीखा रहे हो। हे जगन्नाथ-स्वामिन्! बताओ, तेरे इस जगत् में क्या क्या हो रहे हैं, अर्थात् क्या क्या नहीं हो रहे हैं-

दीनाश्च नाद्य नारायणतां गमिता लोके/
नार्यश्च नैव पूज्यन्ते तव भक्तैर्लोके।
किं किं दर्शयसि प्रभो जगद्विभत्सतां/
किं भवति जगति ब्रूहि जगन्नाथस्वामिन्!।[1]

इसी प्रकार भारत-जनताऽहम् इस शीर्षक कविता में भी कवि सामाजिक-समस्याओं की ओर ध्यानाकर्षण करता है। बलात्कार, हत्या, अपहरण तथा चोरी जैसे अपराध तो आज आम बात है।

अपि सहे बलात्कारान्हत्या-अपहृतीस्तथा तस्करवृत्तीः।
न सहे किन्तु देशस्य भङ्गमुन्निद्रा भारत-जनताऽहम्।।[2]

पर यहाँ कवि का चिन्तन रुढ़िवादी है और लोकमंगल के विरुद्ध है। बलात्कार, हत्या, अपहरण तथा चोरी जैसे अपराध ही देश-विघटन में कारण होते हैं। इन सब के सहन से देश-भङ्ग को नहीं सहने की दावा खोखला है।

अभिराज राजेन्द्र मिश्र- प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र अपने एक गीत में स्त्री के वर्तमान सव्याज सौन्दर्य प्रदर्शन पर व्यङ्ग्य करते हैं। यथा -

त्रिलोकार्पणं सम्भवं त्वत्कटाक्षे
क्व याताधुना शाम्बरी यौवनानाम्।।[3]

गीत का भाव यह है कि तीनों लोक तुम्हारे कटाक्ष को देख कर आत्मसमर्पण कर देता था। वह तुम्हारी जवानी (यौवन) की जादुगरी कहाँ चली गई! यहाँ कवि का आशय वर्तमान में कृत्रिम प्रसाधनों के प्रति स्त्री के बढ़ते हुए लगाव की भर्त्सना करने से है। वास्तविकता के अभाव में सव्याज सौन्दर्य लोक को आकृष्ट नहीं कर पा रहा है, न कर सकता है। आज की स्त्री सौन्दर्य-प्रसाधनों के पीछे भाग रही है। उसे पता नहीं कि वह अपना वास्तविक परिचय खो चुका है।

जनार्दन पाण्डेय मणि- जनार्दन पाण्डेय मणि की कृति रागिणी के एक गीत में स्त्रीविमर्श का संकेत मिलता है। यथा- त्वद्रूपे विचरन्ति सहर्षाः/दुर्योधन-दुःशासन-कंसाः।

---

1. 'ब्रूहि जगन्नाथस्वामिन्' भारतजनताऽहम्
2. भारतजनताऽहम्, भारतजनताऽहम्,
3. प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र

द्रौपद्यो लज्जन्ते नैकाः/अच्युत सामप्रतमपि सद्वंशाः।
दुर्जन-दुष्ट-कदम्ब-कमयितं कलावपि श्रीमन् सन्त्रासय/
माधव दुःखततिं मम नाशय॥[1]

अर्थात् हे माधव तुम्हारे रूप में (तुम्हारा मुखौटा लगाये हुए) दुर्योधन, दुःशासन एवं कंस आनन्द के साथ घूम रहे हैं। अनेक द्रौपदियाँ लजवाई जा रही हैं आज-कल भी। हे अच्युत जो सद्वंश की हैं। दुर्जन, दुष्टों के इस अमित समूह को कलियुग में भी हे प्रभो नष्ट करो। माधव मेरे दुःखसमूह को नष्ट करो। यहाँ द्रौपदी को स्त्री के प्रतिनिधि के रूप में रखा गया है। द्वापर युग में द्रौपदी के साथ जो हुआ था वह आज कलियुग में भी दोहराया जा रहा है। नारियों के साथ आज के दुर्योधन एवं दुःशासन भी वही व्यवहार कर रहे हैं। उनकी लज्जा एवं अस्मिता लूटी जा रही है। कवि यहाँ माधव से प्रार्थना कर रहा है कि दुःखों का नाश करो। अर्थात् जो दुष्ट आज स्त्रियों के साथ दुराचरण कर रहे हैं उन्हें नष्ट करो।

बनमाली बिश्वाल- प्रो. बनमाली बिश्वाल की रचनाओं (कविता कथा) में वर्तमान मानव जीवन की समस्याओं को मुख्यरूप से उभारा गया है। यथार्थता एवं स्वाभाविकता इनकी रचनाओं की प्रमुख विशेषता है। इन्होंने जहाँ उपेक्षित पीड़ित पात्रों की व्यथा व वेदना एवं अन्तर्द्वन्द्वों को भावाभिव्यक्ति दी वहीं इन्होंने नगरीय अथवा पाश्चात्य सभ्यता को आक्षेपित भी किया है। उनके द्वारा विभिन्न क्षेत्रों या वर्गों से पात्रों का चयन पाठकों को सहज आकर्षित करता है। व्यक्तिगत, पारिवारिक एवं सामाजिक दुःखों से त्रस्त मानव-जीवन को सामाजिक अत्याचार या शोषण के रूपायन के माध्यम से जीवन्तता दी गई है।

इनके कथ्य में कल्पना एवं यथार्थ का सन्तुलन मननीय है। प्रस्तुत शोधपत्र में प्रो. बिश्वाल की कविताओं में सांस्कृतिक पर्यावरणचेतना पर विवेचन किया गया है।

प्रो. विश्वाल ने अपनी कविताओं में प्राकृतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, प्रणय, पारिवारिक-सन्त्रास आदि की विभिन्न स्थितियों का मार्मिक चित्रण कहीं यथार्थ तो कहीं व्यंग्यात्मक पद्धति से किया है। इन्होंने न केवल भारतीय परम्परा के रूप में चली आ रही काव्य-लेखन-परम्परा में अपनी प्रतिभा दिखाई है बल्कि नवीन काव्य-लेखन की विभिन्न विधाओं में (जैसे मुक्तछन्दकविता, एकविम्बात्मक कविता एवं हाइकु कविता में) अपने को पूर्णतः सिद्ध किया है।

अपने काव्यसंग्रह व्यथा, यात्रा एवं ऋतुपर्णा में कवि ने आतङ्कवाद, नारीधर्षण, वन्या, वात्या, दुर्भिक्ष, दारिद्र्य, बालश्रमिक, जातिभेद आदि साम्प्रतिक काल की

---

1. रागिणी, गीतसंग्रह, जनार्दनपाण्डे

नानाविध सामाजिक समस्याएं अपूर्व संवेदना से वर्णित हैं।

अब यहाँ उन के काव्यों में सांस्कृतिक पर्यावरण प्रदूषण को दर्शाने हेतु कुछ सामाजिक विसंगतिओं पर बिन्दुशः चर्चा अपेक्षित है- प्रो. बिश्वाल नारीपीड़ा को अति निकट से देखा और समझा है- ऐसा इनके काव्यों से पता चलता है। वे इस प्रसंग में अपने भाव को कुछ इस तरह उजागर करते हैं। यत्र-तत्र कवि का शाणित व्यंग्य हमारी शिथिल परम्परा की और संस्कृति के प्रति फूट पड़ा है-

सौन्दर्यरक्षणविधावतियत्नशीलाः/
यत्नं विधाय विरमन्ति न मातरोद्य।
पाश्चात्यरीत्यनुगमः क्रियतेद्य देशे
मातुः पयोधरयुगं न पिबन्ति वत्साः।।[1]

विभिन्न प्रलोभनों के द्वारा प्रणयबन्धन में बाँध कर प्रेम-प्रदर्शन के ब्याज से सर्वत्र व्याप रहे यौनव्यभिचार, स्त्रियों की दहेज-उत्पीडन तथा सतीप्रथा जैसी कुरीतियों पर प्रस्तुत कटाक्ष किया है। कन्याभ्रूणहत्या, नारीहत्या आदि पर भी कवि ने आवाज उठायी। कवि का व्यंग्य है कि इन सभी तथ्यों के बावजूद भी हम तथाकथित रूप से स्वाधीन हैं। उन्होंने समाज में व्याप्त इन कुरीतियों का व्यंग्यात्मक चित्रण के माध्यम से अनावृत किया है- प्रीतिनाम्ना यौनव्यभिचारः/ सतीनाम्ना नारीहत्या, प्रतिप्राणं रुधिरपिपासा/ तथापि स्वाधीना।[2]

भारतीय संस्कृति में धर्म अर्थ काम मोक्ष- इन चार पुरुषार्थों का स्थान अर्थ एवं काम ने ले लिया है। वस्तुतः आज अर्थ ही पुरुषार्थ है। केवल अर्थ के लिये अपने पति एवं ससुराल के अन्य सदस्यों के द्वारा नव-वधूओं की हत्या कर दी जाती है। पतिसुख के नाम पर नारी आज भी जीवनान्त पीड़ा का शिकार होती है। जैसा कि कवि तथापि स्वाधीनाः कविता में कहता है-

अर्थ एव पुरुषार्थोऽद्य नवोढापि संसहते यौतुकयातनाम्,
सुमहार्घं पतिसुखं प्रतिग्रहं जीवद्वध्वाः निर्ममदहनम् तथापि स्वाधीनाः।।[3]

वर्तमान समाज में प्रचार के माध्यम से वस्तुप्रसार के द्वारा पकड़ होती है। जो जितने व्यापक रूप से विपणन-प्रचार कर सकता है वह उतना कुशल व्यापारी माना जाता है। कम्पनियों के द्वारा विभिन्न प्रकार के विज्ञापनों में प्रचार के लिये अर्धनग्न स्त्रियों का प्रयोग किया जा रहा है। कभी कभी ज्ञात भी नहीं होता कि किस वस्तु का

---

1. मातुः पयोधरयुगं न पिबन्ति वत्साः, सङ्गमेनाभिरामा, बनामाली बिश्वाल, पृ. 17
2. तथापि स्वाधीनाः, व्यथा, बनामाली बिश्वाल, पृ. 16
3. तत्रैव, बनामाली बिश्वाल

विज्ञापन या प्रचार किया जा रहा है। कभी पुरुषों के अधोवस्त्र तथा क्षैरोपकरण (रेजर) आदि वस्तुओं में स्त्रियों के यैवन का प्रयोग हो रहा है। स्वर्णहार के विज्ञापन में पता नहीं लग पाता विज्ञापन स्वर्णहार का हो रहा है या नारी के वक्षोजों का। आज के युग में नारी कैसे विपणन का साधन बन गई है इस तथ्य की ओर कवि विज्ञापनम् कविता में ध्यानाकर्षण करता है- किं विज्ञाप्यते नारीणां यौवनम्, उत किञ्चिद् विपणीयं वस्तु।

पुरुषाणामदोवस्त्रम्, विज्ञाप्यते हन्त नारीदेहे नारीदेहस्तत्रापि माध्यमः।
विज्ञाप्यते केशतैलम्, परं हन्त! विज्ञापनं युवतीनां वर्तुलस्तनयोः,
न जाने च किं वा विज्ञाप्यते नारीवक्षोऽथवा स्वर्णहारः?
चलचित्रं प्रचलति अभिनेत्रियौवनमाश्रित्य,
यावतीय-जन्मनियन्त्रण-साधनेषु, प्रख्याप्यते नारी-नग्नचित्रम्।[1]

प्रस्तुत पङ्क्तियों में कवि के मनकी उद्वेलित भावनाओं का सजीव चित्रण देखने को मिलता है। जिससे समाज के प्रति अपनी जिम्मेदारी समझकर कवि ने कविता के माध्यम से समाज में अनुदिन पनप रही स्त्री-विषयक समस्या की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है। प्रायः आज बढ़ते समाज में स्त्रियों को विपणन का साधन समझा जा रहा है। हर किसी व्यापार में स्त्रियों को ग्राहकों के आकर्षण का केन्द्र बनाया जा रहा है।

भारतीय परम्परा में अहिल्या, द्रोपदी, तारा, कुन्ती, मन्दोदरी को पञ्च-कन्या का स्थान दिया गया है। प्रतिदिन जिनके स्मरण मात्र से ही कोई स्त्री अपने लिए सौभाग्यवती होने का आशीर्वाद प्राप्त करती है। पर कवि प्रो. बिश्वाल ने इन्हीं को केन्द्र में रख कर नारी के सतीत्व सिद्धान्त पर विचार किया है -

कुन्ती सती, वरयित्वा चतुरः पुरुषान्, सत्यपि भर्तरि।
द्रौपद्यपि सती, भूत्वा पञ्चपुरुषाणां पत्नी,/
तारा तथा मन्दोदरी सती, परिणीय स्वदेवरौ,
अहल्यापि सती रमिताऽपि परपुरुषेण।
का तावत् परिभाषा सत्याः?
स्वेच्छया वाऽनिच्छया/जीवन्मृत्युः स्वामीचितानले,
राजस्थाने रूपकँवरि यथा,
अथवा सा चौका सती, या बहुपुरुषरता/
प्रतिपदं सत्यं च संगोप्य धारयति सती-छद्ममुखम्।[2]

---

1. विज्ञापनम्, व्यथा, पृ. 61, बनामाली बिश्वाल
2. सती, व्यथा पृ. 89, बनामाली बिश्वाल

अर्थात् चार पुरुषों के साथ विवाहित कुन्ती सती है। इसी प्रकार पञ्च पुरुषों के साथ विवाहित द्रोपदी अथवा पुनर्विवाह करने वाली तारा एवं मन्दोदरी भी सती हैं, जिनका परिणय अपने-अपने देवर के साथ कर दिया गया था। अथवा अहिल्या सती है जिसका सतीत्व पर पुरुष द्वारा छलपूर्वक हरण किया गया था। अथवा राजस्थान की रूपकुँवरी सती है जिसे बलपूर्वक अपने स्वामी के साथ ही सती होने को विवश किया गया था।

प्रो. वनमाली बिश्वाल सर्वदा अपनी कविताओं में नारी-शोषण के विरुद्ध आवाज उठाते नजर आते हैं। 21वीं सदी में भी नारी का एक वस्तु के रूप में अपनों के द्वारा उपयोग एवं स्वीकृति कवि को आश्चर्यचकित करता है। तभी तो कवि ऋतुपर्णा काव्यसंग्रह की जाया कविता में कहता है-

न सा व्यक्तिः किन्तु काचित् सृष्टिः।/ पत्यै अर्पयति देहं।/
न प्रतिवदति तस्य / ह्वीस्कीपानजन्यं मुखगन्धम्।।[1]

केवल यही नहीं किन्तु उनकी कविताओं में अन्य विभिन्न प्रसङ्गों में भी नाराविमर्श स्पष्ट चित्रित है। जैसे कि ऋतुपर्णा काव्यसंग्रह में नारी नारायणी कविता में कहा गया है-

अद्य किन्तु स्थितिर्भिन्ना
द्रौपद्यास्तत्केशपाशे
दुःशासनो मण्डयति स्नेहात् पुष्पगुच्छम्।
हसन्ती सा प्रतिदाने वदति द्रौपदी - / थैंक यू इति। .....
अद्य सीताः त्वत्सदृश्यः
स्वसतीत्व-प्रमाणार्थं खादितुं विवशाः
गर्भनिरोधकास्ताः गोलिकाः।[2]

केवल नारी ही नहीं, किन्तु कवि की कल्पना है कि नारी शक्ति का प्रतिनिधित्व कर रही देवी भी आज दानव सदृश दुष्ट जनों की आकाङ्क्षाओं को पूरा करने के लिए विवश दीखती है। वस्तुतः यहाँ नारी को ही कवि ने देवी के प्रतीक रूप में स्वीकार किया है-

असहायाऽप्यद्य दुर्गा आकाङ्क्षास्ताः पूरयितुं महिषासुरस्य।[3]

---

1. जाया, ऋतुपर्णा, पृ. 30, बनामाली बिश्वाल
2. नारीनारायणी, ऋतुपर्णा, पृ. 30 , बनामाली बिश्वाल
3. वहीं, बनामाली बिश्वाल

प्रफुल्ल कुमार मिश्र- प्रफुल्ल कुमार मिश्र की कविताओं में नारीविमर्श एक नये स्वरूप में चित्रित है। आधुनिक नारियों के स्वरूप-वर्णन में वे कहीं कहीं साहसी भी प्रतीत होते हैं। जामाता के आगमन में 'श्वश्रूक्लान्तामहानसे' कह कर कवि ने गृहकार्य में नारीशोषण की ओर संकेत किया है। जेब श्वशूर की ढीली होती है पर सास रसोई में क्लान्त रहती है। इस में पुरुषों के धनोपार्जन दायित्व एवं स्त्रियों के गृहकार्यदायित्व भी द्योतित है: श्वशुरस्यकोष: शून्य:, श्वश्रू: क्लान्ता महानसे। श्यालीश्यालौ सेवाक्रान्तौ जामाता दशमो ग्रह:।[1]

कविता 'तवनिलये' में भी कवि नेस्त्रियों के गृहकार्यदायित्वों को प्रकारान्तर से व्यक्त किया है- अपराह्णे प्रलम्बिते/ विद्यालयं बालेषु गतेषु/ भजनं भोजनं च सम्पादिते/ द्वारि च्छन्दपद्भ्यां मध्ये लग्नैकहस्ता/ वामहस्तलग्नमुखं/ कपाटोपरि प्रलम्बते।[2]

कहीं मिश्र जी ने स्त्रियों की परपुरुषासक्ति को भी व्यक्त किया-

गतदिवसे समागतस्य विटस्य/सुखकरं स्मरणं कुरुते।[3]

यहाँ कहीं स्त्रियों के द्वारा पुरुष-प्रवञ्चना की भी बात हुई है: अथवा/ रतीश्वरी/ समागतस्य पुरुषस्य/ मुखमवलोक्य/ मृदु हसति/ हसन्ती आकर्षयति/ आकृष्य जाले पातयति।[4]

स्त्रियों का मातृत्व अधिकार भी महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने वैसी स्त्रियों को धन्य बताया जो गोदी में बच्चों को लिये स्तन्यपान कराती हैं और तदन्य स्त्रियां पीडित हैं-

बहुप्रतीक्षानन्तरं देवी जाता पुत्रवती/ बाल: क्रीडति क्रोडे यस्या:/ चुचुकाग्रचुषितमुख:/ सा वनिता धन्या/ हा पीडिताश्चान्या:।[5]

सदाशिव प्रहराज : सदाशिव प्रहराज अपनी स्तुतिमालिका के देवदेव जगन्नाथ नाम तवनिरर्थकम् में नारी-समस्याओं से व्यथित होकर लिखते हैं कि स्वामी-श्वशुरादि आज अर्थकामी राक्षसबन गये हैं। आज सरलवधू अपने ससुराल में दम तोड़ रही हैं। अत: हे प्रभो! तुम्हारा यह जगन्नाथ नाम निरर्थक है।

राक्षसाश्चार्थकामा वै स्वामी च श्वशुरादय:।
म्रियन्ते सरला वध्वो नाम तव निरर्थकम्॥

---

1. जामाता दशमोग्रह:, प्रफुल्लकुमारमिश्र
2. तवनिलये, प्रफुल्लकुमार मिश्र, पृ.53
3. प्रतीक्षा, कोणार्के, प्रफुल्लकुमारमिश्र, पृ. 2
4. कोणार्के, प्रफुल्लकुमारमिश्र, पृ.3
5. कोणार्के, प्रफुल्लकुमारमिश्र, पृ.5

युवका वै युवत्यश्च कर्महीनाः सुशिक्षिताः।
निराशाः खलु ते सर्वे नाम तव निरर्थकम्॥[1]

प्रमोद कुमार नायक : डा. प्रमोद कुमार नायक ने अपने काव्यसंग्रह दारिद्र्यशतकम् में यह चिन्ता जाहिर की कि महाभारत काल से आज तक वे पुरुषों द्वारा ठगी जा रही है–

महर्षेः अवर्त्तमाने / सुकुमार्य्याः रूपवत्याः सौन्दर्येण / आकृष्टः नरेशः / तन्वङ्गीकरकमले मुद्रिकां संस्थाप्य / पत्नीत्वेन स्वीकुरुते पावने आश्रमे। / प्राप्तयौवना सुन्दरी महर्षितनया/समर्पयति आत्मानम्/ आदिमक्षुधानाशाय राजपत्नी–गौरवाकाङ्क्षिणी/ समाप्य वनविहारं मृगयाव्यापारं /प्रत्यावर्तते नरेन्द्रः / परित्यज्य वनकन्यां / क्षणकालस्य सङ्गिनीम् / इतः पूर्वं त्यक्ता यथा शतशः ललनाः।[2]

रवीन्द्र कुमार पण्डा – ओडिशा के कवि डा. रवीन्द्र कुमार पण्डा बरोदा में रहते हैं पर काव्य में उत्कल को विषय बनाना नहीं भूलते। नारीदशा चित्रण के प्रसंग में वे उत्कलरमणीयों की विशेषताओं पर बल देते हैं। कविता बलाका में वे नारियों को सुकलाकुशला ही नहीं अपितु सुकर्मकुशला भी कहा है –

उत्कलजननी वीरप्रसविनी/ उत्कलममता चित्तविमोहिनी/
उत्कलमाता जगति पूजिता/ सदैव मधुरा उत्कलकथा.....
उत्कलसुषमा प्रियमनोरमा / मनो मोदयति उत्कलवामा/
सुकला-कुशला उत्कलरमणी/...उत्कलबाला/...सुकर्मकुशला[3]

कवि केवल नारिशक्ति के शुक्ल या पवित्र पक्ष पर ही नहीं कृष्ण अथवा दूषण पक्ष का भी संकेत करता है। कवि का मानना है कि सभी स्थितियों में नारी विश्वसनीय नहीं होती। वाराङ्गनाओं के समक्ष हृदय उन्मोचन का औचित्य नहीं होता। कवि की भाषा में –

वाराङ्गनानां पुरतो / नवयमुन्मोचयामहृदयम् /
शिखण्डिनां सविधे/ न वयं वर्णयामो प्रतिभाया महत्त्वम्/
नपुंसकानामग्रे/ न वयं वेदयामो बीजस्य वेदनाम्।[4]

प्रमोद चन्द्र मिश्र : व्योमयानयात्रा–शतकम् में डा. प्रमोद चन्द्र मिश्र ने नारियों के स्वावलम्बनशीलता पर जोर दिया है। नारियां आज न केवल हर पेशे में आ रही

---

1. देवदेव जगन्नाथ नाम तव निरर्थकम्, स्तुतिमालिका, सदाशिवप्रहराज
2. दारिद्र्यशतकम् (काव्यसंग्रह), प्रमोद कुमार नायक
3. बलाका – 31, रवीन्द्रकुमार पण्डा, बडौदा,
4. व्योमयानयात्रा–शतकम्, स्रग्धरा, डा. प्रमोदचन्द्र मिश्र, भुवनेश्वर, ओडिशा

हैं किन्तु एयरहोस्टेस आदि पदों में भी अपने प्रभुत्व को सिद्ध कर रही हैं अपितु अपने शारीरिक सौन्दर्य एवं कोमल तथा प्रिय व्यवहार से यात्रियों को प्रसन्न भी कर रही हैं:

कालेस्मिन्परिचारिका सुवदनाः स्मेराननाः शोभनाः/
गौर्यश्चञ्चललोचना सुवचना रम्ये क्षणाश्चाङ्गनाः।

यात्रिभ्यः सहधन्यवादवचनैः कार्तज्ञमाज्ञापयन्/
सर्वो यात्रिगणः प्रफुल्लमनसा यानाद्बहिः प्रस्थितः।

नारायण दाश - डा. नारायण दाश आज हर विषय पर लेखनी चला रहे हैं। उनकी कविताओं में हाइकु का भी एक स्वतन्त्र स्थान है। नारीविमर्श के प्रसंग में वरोदा से प्रसारित अन्तर्जाल-पत्रिका 'वर्तमान वार्तापत्र' में प्रकाशित उनकी कविता गणधर्षणम् यहाँ उल्लेखयोग्य है -

समाजकीटैः/ कृतं गणधर्षणं/ सुसभ्यतायाः॥/
सर्वकारस्तु / जनैः परिचाल्यते / नीलशृगालैः॥

को वा रक्षेत् /आरक्षीवाजनता/ व्यग्रशकुनम्॥/
कायेन वाचा /मनसेन्द्रियैः दृढाभिः /आत्मानं रक्षेत्॥

गीतावचनं/ धरेदात्मनात्मानं/ मनोदार्ढ्येन॥/
तथापि देशः/ श्वसिति नववर्षे/ गणधर्षणैः॥[70]

उपसंहार- जैसा कि हम लोगों ने देखा संस्कृत वाङ्मय में नारी-शिक्षा पर सर्वत्र बल दिया गया है। इस लेख का सन्देश भी यही है, जैसा कि अधोलिखित प्रसिद्ध अंग्रेजी सूक्ति में उल्लिखित है- If a woman is educated then the whole family is educated.

प्राचीन भारतीय नारी-सदृश आज की भारतीय नारी भी पुरुषों के समान ही पढ़ी-लिखी एवं सुसंस्कृत है। जीवनवृत्ति के लिए सचेष्ट वह कहीं भी जाने - आने के लिए स्वतन्त्र हैं। काव्य में भी उस परिवर्तित स्वरूप का चित्रण आवश्यक है। उस परिवर्तित स्वरूप को एक ओर जहाँ पुरानी परंपराओं से पूर्णतया बाँधा नहीं जा सकता तो वहीं दूसरी ओर उसे सर्वथा बन्धनरहित भी नहीं किया जा सकता। आधुनिक संस्कृत-साहित्य में स्वातन्त्र्यपूर्व साहित्य से स्वातन्त्र्योत्तर साहित्य में जो एक अन्तर दृष्टिगत होता है वह यह है- पुरातन मूल्यों के विरुद्ध प्रतिक्रिया एवं नवीन मूल्यों की स्थापना।

---

1. गणधर्षणम्, नारायणदाशः, वर्तमान वार्तापत्रम् बडौदा

सीमोन को आधुनिक नारीवाद के प्रतिष्ठाता माना जाता है जिन्होंने अपने पुस्तक The second señ (फ्रांसीसी 1946, अंग्रेजी 1953) के माध्यम से विश्व को नारी सशक्तीकरण का सन्देश दिया। पर वस्तुस्थिति तो यह है कि आज से चार सौ साल पहले मीरा ने स्त्री के रूप में अपने पृथक् अस्तित्व एवं स्वतन्त्र सत्ता की घोषणा की। राजघराने की बहू गली कूचों में घूमने लगी, मन्दिरों में अकेली आने-जाने लगी, भजन-कीर्तन करने लगी, नाचने-गाने लगी। ज्ञान घर में नहीं सत्संग से मिलता। ज्ञान पर तो सब का अधिकार है। सम्भवत: वह समय से पहले ही यह मांग करने लगी तो बावरी करार दी गई। पर सन्तोष की बात यह है कि वह हार न मानी।

स्त्री-स्वतन्त्रता में महादेवी वर्मा का इतना बडा योगदान है कि उन्हें आधुनिक मीरा के साथ-साथ भारतीय सीमोन कहना अनुचित नहीं होगा। महादेवी वर्मा का मानना है कि विवाह में किसी व्यक्ति की साहचर्य की इच्छा प्रधान होनी चाहिए, आर्थिक कठिनाईयों की विवशता नहीं। ...स्त्री के विकास की चरम सीमा उसके मातृत्व में हो सकती है, परन्तु यह कर्तव्य उसे अपनी मानसिक तथा शारीरिक शक्तियों को तोल कर स्वेच्छा से ही स्वीकार करना चाहिए, परवश हो कर नहीं। उनका मानना है कि स्त्रियों को विवाहसंबन्धी या मातृत्वसंबन्धी निर्णय लेने की स्वतन्त्रता तभी होगी जब वह स्वावलम्बी होगी।

संक्षेप में कहें तो महादेवी वर्मा की स्त्री-स्वतन्त्रता का अर्थ है- स्त्री-पुरुष के सामाजिक जीवन में सामञ्जस्य। वे प्रतिहिंसा की बात नहीं करती। शृङ्खला की कड़ियाँ तोड़ने की बात कहती है तो साथ ही बन्धन और मुक्ति की सीमाओं की चर्चा भी करती।

उनका मानना है कि पुरुष द्वारा नारी का चरित्र अधिक आदर्श बन सकता है, परन्तु अधिक सत्य नहीं। विकृति के अधिक निकट पहुँच सकता है परन्तु यथार्थ के अधिक समीप नहीं। पुरुष के लिए नारीत्व अनुमान है परन्तु नारी के लिए अनुभव। अत: अपने जीवन का जैसा सजीव चित्र वह हमें दे सकेगी वैसा पुरुष बहुत साधना के उपरान्त भी शायद न दे सके।

सन्दर्भग्रन्थसूची

1. स्त्रीविमर्श - महादेवीवर्मा, डा. ऊषामिश्रा, हिन्दूस्तानीएकेडेमी, इलाहाबाद, प्र. संस्करण- 2009
2. कालिदासग्रन्थावली, भाग-1-2, सं. रेवाप्रसाद द्विवेदी, कालिदास संस्कृत अकादमी, उज्जैन, प्र. संस्करण - 2008

3. ब्रह्मबिन्दूपनिषद्, Edited and Published by Geeta Press, Gorakhapur (U.P.), 1975
4. यजुर्वेद, Edited by Priyavrata Das, published by Vaidik Anusandhan Pratisthan, Bhubaneshwar, 1st Edition, 1976
5. तैत्तिरीयोपनिषद् (शाङ्करभाष्यसहित), गीताप्रेस, गोरखपुर
6. The second señ by Simone, फ्रांसीसी 1946 / अंग्रेजी 1953
7. पद्यबन्धा, अंका: 1- 3, बीणापाणि प्रतिष्ठानम्
8. संस्कृतवाङ्मयकाइतिहास, (आधुनिक-साहित्य-खण्ड:, सं. जगन्नाथपाठक:), उत्तरप्रदेश- संस्कृत - संस्थानम्, लखनऊ, 2000
9. दृक्, अंक 1-31, दृग्भारती, 57, वसन्तविहार, झूसी, इलाहाबाद- 211019
10. भावस्थराणि जननान्तरसौहृदानि, हर्षदेव माधव, श्रीवाणी अकादमी, अहमदाबाद (2000)
11. कणक्याक्षिप्तं माणिक्यनूपुरम् हर्षदेव माधव, श्रीवाणी अकादमी, अहमदाबाद (2000)
12. रथ्यासु जम्बूवर्णानां शिराणाम् हर्षदेव माधव, संस्कृत-सेवा समिति, अहमदाबाद (1985)
13. अलकनन्दा हर्षदेव माधव, पार्श्व प्रकाशनम्, अहमदाबाद(1990)
14. शब्दानां निर्मक्षिकेषु ध्वंसावशेषेषु हर्षदेव माधव, पार्श्व-प्रकाशनम्, अहमदाबाद (1993)
15. मृगयाहर्षदेव माधव, पार्श्व प्रकाशनम्, अहमदाबाद(1994)
16. लावारसदिग्धा स्वप्नमया: पर्वता: हर्षदेव माधव, संस्कृत-सेवा समिति, अहमदाबाद(1996)
17. पुरायत्रस्रोत:, हर्षदेव माधव, संस्कृतसाहित्य अकादमी, गान्धीनगर (1998)
18. जगन्नाथसुभाषितम्, भाग - 1, जगन्नाथपाठक, राष्ट्रियसंस्कृत - संस्थान, नईदिल्ली - 58, 2011
19. व्यथा (1997) पद्मजा प्रकाशन, 57, वसन्तविहार, झूसी, इलाहाबाद- 211019
20. ऋतुपर्णा (1999) पद्मजा प्रकाशन, 57, वसन्तविहार, झूसी, इलाहाबाद- 211019
21. दारुब्रह्म (2001) पद्मजा प्रकाशन, 57, वसन्तविहार, झूसी, इलाहाबाद- 211019

22. यात्रा (2002) पद्मजा प्रकाशन, 57, वसन्तविहार, झूसी, इलाहाबाद- 211019

23. प्रियतमा, (1999, 2012) पद्मजाप्रकाशन, 57, वसन्तविहार, झूसी, इलाहाबाद-211019

24. वेलेण्टाइन्-डे-सन्देशः(2000), पद्मजाप्रकाशन, 57, वसन्तविहार, झूसी, इलाहाबाद-211019

25. सङ्गमेनाभिरामा (1996), पद्मजाप्रकाशन, 57, वसन्तविहार, झूसी, इलाहाबाद-211019

26. ऋतुपर्णा, बनमालीविश्वाल, पद्मजाप्रकाशनम्, 57 वसन्तविहारझूंसी, इलाहाबाद, २००१

27. Parpart, Jane (22 October 2008) "Who is the Other\ A Postmodern Feminist Critique of Women and Development Theory and Practice"] Development and Chance 24 (3) 439&464.

28. Assiter, Alison (1996)- Enlightened women modernist feminism in a postmodern age- London New York, Routledge- ISBN 9780415083386.

29. Kottiswari, W.S. (2008)- Postmodern feminist writers- New Delhi, Sarup & Sons- ISBN 9788176258210.

30. Williams, Susan H. Williams, David C. (1997)- "A feminist theory of malebashing (paper 574)-"- Michigan Journal of Gender & Law (Faculty Publications) 4 (1) : 35&128.

31. कार्गिललहरी, नारायणदाश, प्रका. सवितादाश, 17/73, आचार्यपल्ली, नरेन्द्रपुरम्, कोलकाता-103, 2013

32. कोणार्के, प्रफुल्लकुमार मिश्र, फडन्यास सहाय प्रकल्पः, संस्कृत विभागः, उत्कलविश्वविद्यालयः, भुवनेश्वर, 2001

33. तवनिलये, प्रफुल्लकुमार मिश्र, स्वर्ण-प्रकाशनम्, भुवनेश्वर, 2000

34. तथापिसत्यस्यमुखम्, प्रफुल्लकुमार मिश्र, आर्षविद्या-विकास-केन्द्रम्, भुवनेश्वर, 2011

35. चत्वारिशृङ्गाः कविः-प्रफुल्लकुमारमिश्र, संस्कृतविभाग, उत्कलविश्वविद्यालय, भुवनेश्वर, 2009

36. चित्रकुरङ्गी, कविः-प्रफुल्लकुमारमिश्र, संस्कृतविभाग, उत्कलविश्वविद्यालय, भुवनेश्वरम्.. 1995

37. मनोजङ्गमे, प्रफुल्लकुमार मिश्र, संस्कृतविभाग, उत्कलविश्वविद्यालयः, भुवनेश्वर, 2010

38. Contemporary Sanskrit writings in Orissa, Arunranjan Mishra, Pratibha Prakashan, Delhi, 2006.

39. Utkal Pratibha (Proceedings of National Seminar), ed- Dr- Sukanta Senapati, Dr- Ramakant Mishra, Rashtriya Sanskrit Sansthan, Sadasiv Campus, Puri, Odisha, 2012&13.

✦✦✦

बौद्ध साहित्य में इतिहास और संस्कृति के सूत्र

-डॉ. प्रफुल्ल गड़पाल

सहायकाचार्य (साहित्य) राष्ट्रिय-संस्कृत-संस्थान
श्रीरघुनाथ कीर्ति परिसर, देवप्रयाग, उत्तराखण्ड

'भारत' एक अतीव प्राचीन देश है। प्राचीन साहित्य में इसे विविध नामों से अभिहित किया गया है, किञ्च भारत (अंग्रेजी में इण्डिया) यह नाम वस्तुतः 1950 में लागू भारत के संविधान के आधार पर इसका अधिकृत नाम है। भारत-देश का इतिहास तथा संस्कृति स्वाभाविक रूप से अतीव प्राचीन है। पुरातात्त्विक तथा साहित्यिक स्रोतों के माध्यम से इस देश की सुसमृद्ध तथा विस्तृत संस्कृति के सूत्र प्राप्त होते हैं।

भारत में प्रधानतः दो संस्कृतियों का प्रवाह दिखाई देता है-(1) ब्राह्मण संस्कृति तथा (2) श्रमण-संस्कृति। उक्त दोनों संस्कृतियों में विस्तृत रूप में धर्म एवं दर्शन के तत्त्व दिखाई देते हैं, किन्तु प्रसंगतः इनमें भारतीय इतिहास और संस्कृति के तत्त्व भी समानतया दृग्गोचर होते हैं। ब्राह्मण संस्कृति के अन्तर्गत वेद, आरण्यक, उपनिषद्, पुराण तथा लौकिक संस्कृत साहित्य आता है, तो श्रमण संस्कृति के तहत बौद्ध एवं जैन साहित्य सहित अन्य श्रमणाश्रयी मतानुमत का साहित्य अन्तर्भावित होता है। इस प्रकार ब्राह्मण तथा श्रमण संस्कृति में समाहित सकल साहित्य में तत्कालिक भारत के इतिहास तथा संस्कृति के दर्शन होते हैं।

विशेषतः बौद्ध-साहित्य के माध्यम से प्राचीन-भारत के अनेक विषयों पर स्पष्ट प्रकाश पड़ता है। ध्यातव्य है कि बौद्ध साहित्य प्रधानतः पालि तथा संस्कृत में प्राप्त होता है। बौद्ध-धम्म के वैश्विक तथा अन्तर्राष्ट्रीय प्रचार के फलस्वरूप तिब्बती और चीनी भाषाओं में भी सुविशाल अनूदित साहित्य उपलब्ध होता है। इन विविध भाषाओं में रचित साहित्य में प्रधानतः भगवान् बुद्ध के जीवन तथा दर्शन का विवरण प्राप्त होता है, किन्तु साथ ही इसमें तात्कालिक इतिहास और संस्कृति के प्रमुख तत्त्वों के भी दर्शन होते हैं।

विषय-प्रस्तुतीकरण की सुविधा की दृष्टि से पालि तथा संस्कृत के बौद्ध-साहित्य का सर्वेक्षणात्मक विवेचन इस प्रकार है-

पालि-साहित्य

पालि साहित्य के अन्तर्गत भगवान् बुद्ध के द्वारा देशित 84,000 धर्म-स्कन्धों के रूप में संकलित तिपिटक साहित्य प्राप्त होता है। तिपिटक तीन पिटकों में विभक्त है[1]–(1) विनय-पिटक, (2) सुत्त-पिटक और (3) अभिधम्म-पिटक। 'विनय-पिटक' वस्तुतः भिक्षुओं और भिक्षुणियों के अनुशासन का संग्रह है। 'सुत्त-पिटक' उपदेशों का संकलन है तथा 'अभिधम्मपिटक' में साधकों के लिए उपदिष्ट दर्शन प्राप्त होता है। वस्तुतः तिपिटक का संगायन विषयक्रम से किया गया है। इसी कारण विनय पिटक में प्रमुखतः बौद्ध भिक्खु-भिक्खुणियों के लिए पालनीय नियम, सुत्त पिटक में बुद्धवचन तथा अभिधम्म पिटक में दर्शन सम्बद्ध विषय संग्रहित है। तिपिटक के अन्तर्गत प्राप्त ग्रन्थों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

(1) विनय पिटक–बौद्ध भिक्खु-भिक्खुणियों के द्वारा पालन किये जाने वाले नियमों और अनुशासन की बातें विनय पिटक में प्राप्त होती है। इस दृष्टि से यह बौद्ध भिक्खुओं के लिए एक संविधान है। बुद्ध ने इसे निब्बाण (निर्वाण) प्राप्ति का मार्ग माना है। इसे धम्म और विनय का एक समन्वित रूप कहा जा सकता है। संघ के निर्माण के पश्चात् यानि प्रारम्भ में विनय की अधिक आवश्यकता महसूस नहीं की गई, किन्तु संघ के विकास के साथ स्वच्छन्दवादी भिक्खुओं के आचरण को संयमित करने के लिए विनय का यथा-रीति निर्धारण किया जाने लगा। बुद्ध के महापरिनिब्बाण (महापरिनिर्वाण) के बाद तो यही विनय भिक्खुओं का दायाद (उत्तराधिकार) बन गया।

विनय पिटक निम्नोक्त प्रकार से पाँच खण्डों में विभक्त है–सुत्तविभंग (1. पाराजिक व 2. पाचित्तिय), खन्धक (3. महावग्ग व 4. चुल्लवग्ग) और 5. परिवार।

सुत्तविभंग में अपराध और उनके प्रायश्चित्त-प्रकारों का वर्णन हैं। इसमें अपराधों की संख्या 227 बतायी गई है– 4 पाराजिक (मैथुन, चोरी, आत्महत्या और लाभेच्छा), 13 संघादिसेस (वीर्यनाश, स्त्री का स्पर्श व वार्तालाप, आकर्षण व विवाह करना, विहारनिर्माण, संघभेदादि), 2 अनियतधम्म, 30 निसग्गिय पाचित्तिय धम्म (अपराध की स्वीकृतिपूर्वक प्रायश्चित और वस्तु-परित्याग), 92 पाचित्तिय धम्म (प्रायश्चित), 4 पटिदेसनिय धम्म (प्रतिदेसना), 75 सेखियधम्म (बाह्यशिष्टाचार) और 7 अधिकरण समथ धम्म (संघगत विवादों में शान्ति के उपाय) इसमें बताये गये हैं। खन्धक के महावग्ग में बुद्ध की यात्रा, शिष्य और उपाध्याय के कर्तव्य, उपसम्पदा, प्रव्रज्या, उपोसथ, वर्षावास, प्रवारणा, भैषज्य, स्वेदकर्म, आहार, चीवर, उपानह आदि का वर्णन है। पुनः चुल्लवग्ग तर्जनीय कर्म, नियस्स कर्म, प्रव्राजनीय कर्म, प्रतिसारणीय कर्म, उत्क्षेपणीय कर्म, पारिवासिक कर्म, शुक्रत्याग दण्ड, विनय, वस्त्र, बाह्यालंकार,

विहार, आवास प्रशासन, प्रातिमोक्ष और प्रथम-द्वितीय संगीति का मनोरम विवेचन प्रस्तुत करता है। परिवार विनय पिटक का अन्तिम भाग है; 16 परिच्छेदों में सम्पूर्ण विनय पिटक की सामग्री इसमें समग्रतः प्राप्त होती है।

विनय पिटक मात्र विनय का संग्रह नहीं। उसमें तत्कालीन भारतीय इतिहास तथा संस्कृति के अनेक पहलू भी उपलब्ध होते हैं। विनय के विकास के साथ साधु-जीवन की विकृत स्थिति का परिचय तो मिलता ही है, साथ ही इसमें बौद्धेतर सम्प्रदायों के विनय नियम, आभूषण, केश, कंघी, दर्पण, वस्त्र, विहार निर्माण, विविध रंग, उपानह आदि का भी सुन्दर वर्णन दिया गया है। इस प्रकार विनय पिटक जहाँ बौद्ध संस्कृति का उद्घाटन करता है, वहाँ वह तत्सम्बन्धित अनेक अध्यायों को भी प्रस्तुत करता चलता है।

(2) सुत्त पिटक—सुत्त पिटक में भगवान् बुद्ध के द्वारा उपदिष्ट सद्वचन संग्रहित हैं। इसका विषय भगवान् बुद्ध के उपदेशों का संग्रह करना है। इसमें प्राप्त वर्णन के अनुसार, वे बहुत्र स्वयं उपदेश देते हैं, कदाचित् वे सारिपुत्र, मौद्गल्यायन या आनन्द जैसे अपने वरिष्ठ शिष्यों को धम्मोपदेश देने का आदेश देते हैं और कहीं कहीं वे शिष्यों के द्वारा उपदिष्ट विषय का अनुमोदन भी करते हुए दिखाई देते हैं। इस प्रकार बुद्धत्व प्राप्ति से लेकर महापरिनिर्वाण-प्राप्ति तक के 45 वर्षों के भ्रमण-काल की जीवनचर्या का चित्रण सुत्त पिटक में मिलता है।

इसी वर्णन क्रम में भारतीय संस्कृति और तत्कालीन इतिहास भी इसमें पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होता है। सर्वास्तिवादी सुत्त पिटक में 'निकाय' के स्थान पर 'आगम' शब्द का प्रयोग मिलता है। सुत्त पिटक में गद्य और पद्य दोनों हैं। प्रायः प्रत्येक सुत्त यह स्पष्ट करता जाता है कि बुद्ध-प्रदत्त धम्मोपदेश कहाँ और किसके द्वारा किया गया है। उपदेश समाप्त होने के बाद श्रोता अथवा प्रश्नकर्ता अपने कृतज्ञतापूर्ण उद्गार व्यक्त करता है और साथ ही बुद्ध की शरण में और उनके धम्म तथा संघ की शरण में जाने का भी संकल्प करता है।

सुत्त पिटक पाँच भागों या निकायों में विभक्त है—(1) दीघ निकाय, (2) मज्झिम निकाय, (3) संयुत्त निकाय, (4) अंगुत्तर निकाय और (5) खुद्दक निकाय। प्रथम निकाय अर्थात् दीघ निकाय तीन भागों में विभक्त है—सीलक्खन्ध, महावग्ग और पाथेय या पाथिकवग्ग। इन तीनों भागों में कुल मिलाकर 4 सुत्त हैं। दीघ निकाय में अपेक्षाकृत लम्बे सुत्त हैं, किन्तु इसमें कालक्रम का ध्यान नहीं रखा गया। सीलक्खन्ध में शील, समाधि और प्रज्ञा सम्बन्धी उपदेश हैं। महावग्ग और पथिकवग्ग में भगवान् बुद्ध की जीवनचर्या तथा उनके सिद्धान्तों का विश्लेषण है। द्वितीय निकाय यानि मज्झिम निकाय में तत्कालीन ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक सामग्री प्राप्त होती है। इसमें

15 वग्ग और 152 सुत्त हैं। तृतीय स्थान संयुत्त-निकाय का है। यह संयुत्त निकाय पाँच वग्गों (वर्गों) में विभक्त है। संयुत्त-निकाय के वग्ग इस प्रकार हैं-सगाथवग्ग, निदानवग्ग, खन्धवग्ग, सळायतनवग्ग और महावग्ग। इसमें कुल 56 संयुत्त हैं। इसमें तत्कालीन समाज और संस्कृति का वर्णन मिलता है। चतुर्थ निकाय यानि अंगुतर निकाय संख्यात्मक शैली में निबद्ध 11 निपातों और 169 वग्गों में सुग्रथित निकाय है। पाँचवे तथा अन्तिम खुद्दक निकाय में अनेक छोटे-बड़े 15 ग्रन्थ हैं, जो इस प्रकार हैं–(1) खुद्दकपाठ, (2) धम्मपद, (3) उदान, (4) इतिवुत्तक, (5) सुत्तनिपात, (6) विमानवत्थु, (7) पेतवत्थु, (8) थेरगाथा, (9) थेरीगाथा, (10) जातक, (11) निद्देस, (12) पटिसम्भिदा, (13) अपदान, (14) बुद्धवंस और (15) चरियापिटक। अपने वैशिष्ट्य और माहात्म्य के कारण नेत्तिप्पकरण, मिलिन्दपञ्ह और पेटकोपदेस भी इसके अन्तर्गत परिगणित किये जाते हैं।

नैतिकता और विवेकवाद दृष्टि से ये सभी ग्रन्थ अत्यन्त महत्त्व के हैं। इन ग्रन्थों में प्राचीन भारत के इतिहास का बहुत सुन्दर चित्रण प्राप्त होता है। इसी प्रकार तत्तत्कालीन संस्कृति के अवगाहन के लिए यह एक उत्तम स्त्रोत है।

(3) अभिधम्म पिटक–अभिधम्म पिटक जनसाधारण के लिए नहीं, अपितु एक विशिष्ट बुद्धिवादी वर्ग के लिए संग्राह्य है। परम्परानुसार अभिधम्म के प्रमुख ज्ञाता सारिपुत्र थे। शायद इसीलिए उन्हें प्रधान शिष्य (अग्रश्रावक) के रूप में भी स्वीकार किया गया है। धर्म और विनय का संगायन तो प्रथम-द्वितीय संगीति में हो चुका था, परन्तु अभिधम्म तृतीय संगीति का ही परिणाम है, यह सुनिश्चित है। अभिधम्म सात ग्रन्थों का समुदाय है–(1) धम्मसंगणि, (2) विभंग, (3) धातुकथा, (4) पुग्गलपुञ्जति, (5) कथावत्थु, (6) यमक और (7) पट्ठान। यद्यपि अभिधम्म-पिटक के अन्तर्गत दर्शन का गूढ़ रहस्य उपदिष्ट है, तथापि इसमें प्राचीन इतिहास और संस्कृति के तत्त्व विद्यमान हैं।

पालि भाषा में रचित अन्य महत्त्वपूर्ण साहित्य–मूल तिपिटक साहित्य के अतिरिक्त पालि भाषा में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण साहित्य भी रचा गया है। तिपिटकों की अट्ठकथाएँ (अर्थकथाएँ) तथा उन पर टीकाएँ यहाँ विशेष उल्लेखनीय हैं। इसमें अट्ठकथा साहित्य विशेष उल्लेखनीय है। अट्ठकथा (अर्थकथा) का शाब्दिक अर्थ है–अर्थ की कथा अथवा अर्थ की व्याख्या। तिपिटकों में आई हुई घटनाओं की व्याख्या करना तथा उनका अर्थ बताना और उनका सन्दर्भ देना अट्ठकथाओं का प्रमुख कार्य है। इसके अलावा यथासम्भव काल, स्थान और सम्बन्धित ऐतिहासिक परिस्थितियों का स्पष्टीकरण भी अट्ठकथाओं में प्राप्त होता है। ये अट्ठकथाएँ तथ्यों की ऐतिहासिक-पृष्ठभूमि को भी निरूपित करती है। इनमें शब्द, अर्थ और सम्बद्ध

घटना की दृष्टि से भी विचार प्राप्त होते हैं। अट्ठकथा के लिए 'अत्थवण्णना' तथा 'अत्थसवण्णना' शब्दों का भी प्रयोग मिलता है।[2] पालि साहित्य के महान् अट्ठकथाकारों में आचार्य बुद्धदत्त, आचार्य बुद्धघोष और आचार्य धम्मपाल का नाम अत्यन्त सम्मान के साथ लिया जाता है। इसी प्रकार महत्त्वपूर्ण टीका साहित्य भी प्राप्त होता है। वस्तुतः अट्ठकथा ग्रन्थ में आये हुए कठिन और विषम शब्दों की व्याख्या टीकाओं के माध्यम से ही प्राप्त होती है।

श्रीलंका के पराक्रम बाहु प्रथम (1156-1186 ई.) का शासन-काल पालि साहित्य के उत्तरकालीन विकास के इतिहास की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। उसके शासन-काल में श्रीलंका में एक सभा आयोजित की गई। इसी समय से अट्ठकथाओं पर टीका और अन्य महत्त्वपूर्ण पालि साहित्य प्रणयन की परम्परा आज तक सातत्य से चली आ रही है।

उपर्युक्त साहित्य के अतिरिक्त पालि वाङ्मय में वंस साहित्य, काव्य, व्याकरण ग्रन्थ, कोश ग्रन्थ, छन्दःशास्त्रीय ग्रन्थ और अभिलेखादि भी प्रचुरतया प्राप्त होते हैं। वंस साहित्य के अन्तर्गत प्रमुख वंस ग्रन्थ ये हैं—1. दीपवंस, 2. महावंस, 3. चूल्लवंस, 4. बुद्धघोसुप्पत्ति, 5. सद्धम्मसंगह, 6. महाबोधिवंस, 7. थूपवंस, 8. अत्तनगलुविहारवंस, 9. दाठावंस, 10. जिनकालमालिनी, 11. छकेसधातुवंस, 12. नळाटधातुवंस, 13. सन्देस-कथा, 14.गन्धवंस, 15. संगीति-वंस, 16. सासनवंस और 17. सासनवंसदीप आदि। नैतिक आदर्शवाद, उच्च धार्मिक भावना और इतिवृत्तात्मक विशेषताओं के साथ पालि में अनेक काव्य रचे गये। इनमें प्रमुख हैं-1. अनागतवंस, 2. तेलकटाहगाथा, 3. जिनालंकार, 4. जिनचरित, 5. पज्जमधु, 6. लोकप्पदीपसार, 9. रसवाहिनी, 10. बुद्धालंकार, 11. सहस्सवत्थुप्पकरण और 12. राजाधिराजविलासिनी।

इसमें श्रीलंका में विरचित दीपवंस, महावंस और चूलवंस जैसे ग्रन्थ इतिहास और संस्कृति के ज्ञान के लिए मील का पत्थर सिद्ध हो चुके हैं। आचार्य बुद्धघोष की विद्वत्तापूर्ण मौलिक कृति 'विसुद्धिमग्गो' भी इतिहास एवं संस्कृति के विषय में उल्लेखनीय है, जो 'प्रारम्भिक बौद्धधर्म का एक विश्वकोश' कहलाता है। इस ग्रन्थ में आध्यात्मिक तत्त्वों के साथ-साथ ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक तत्त्वों के भी दर्शन होते हैं। पालि-साहित्य के अन्तर्गत प्राप्त होने वाले सुत्त वस्तुतः तत्कालीन समाज की संस्कृति तथा इतिहास के उत्तम स्रोत हैं।

पालि साहित्य की तरह ही बौद्ध-धर्म से सम्बद्ध सुविशाल तथा सुसमृद्ध साहित्य संस्कृत भाषा में भी प्राप्त होता है। बौद्ध संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त परिचय निम्नोक्त है—

संस्कृत-साहित्य

बौद्ध संस्कृत साहित्य द्वादशांगों[3] में प्राप्त होता है। तद्यथा–

सूत्रं गेयं व्याकरणं गाथोदानावदानकम्।
इतिवृत्तकं निदानं वैपुल्यं च सजातकम्।
उपदेशाद्भुतौ धर्मौ द्वादशांगमिदं वचः॥

इस प्रकार यह बौद्ध संस्कृत साहित्य अत्यन्त विस्तृत साहित्य है। बौद्ध संस्कृत साहित्य का एक बहुत बड़ा भाग आज प्राप्त नहीं हो पाया है, किन्तु इसके चीनी, तिब्बती तथा मंगोल आदि भाषाओं में प्राप्त अनुवादों के आधाार पर अनुमान अवश्य किया जा सकता है कि यह साहित्य अत्यन्त परिपूर्ण तथा समृद्ध था। बौद्ध संस्कृत साहित्य के अन्तर्गत निम्नोक्त साहित्य प्राप्त होता है, जो इतिहास एवं संस्कृति के अध्ययन की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं–

महायान-सूत्रों के तहत नौ ग्रन्थ प्राप्त होते हैं। इन्हें **'वैपुल्य-सूत्र'** भी कहा जाता है। महायानी बौद्ध देशों में इनका अत्यन्त सम्मान हैं। बौद्ध-विहारों तथा मठों में इनकी पूजा-अर्चना की जाती है। ये महायान-सूत्र इस प्रकार है–

1. अष्टसाहस्त्रिका प्रज्ञापारमिता, 2. सद्धर्म-पुण्डरीक सूत्र, 3. ललित-विस्तर, 4. लंकावतार-सूत्र, 5. सुवर्णप्रभास सूत्र, 6. गण्डव्यूह सूत्र, 7. तथागत-गुह्यक सूत्र, 8. समाधिराज सूत्र और 9. दशभूमीश्वर सूत्र।

अवदान बौद्ध संस्कृत साहित्य का अत्यन्त प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं–

1. बोधिसत्त्वावदानमाला (जातकमाला), 2. अवदानशतक, 3. अवदान-कल्पलता, 4. दिव्यावदान, 5. द्वात्रिंशत्यवदानमाला, 6. कल्पद्रुमावदान, 7. रत्नावदानमाला, 8. विचित्र-कर्णिकावदानमाला, 9. चित्रितकर्णिकावदान, 10. भद्रकल्पावदान तथा 11. अन्य महत्त्वपूर्ण अवदान-साहित्य।

बुद्धचरितात्मक साहित्य–इसके अन्तर्गत **महावस्तु अवदान** आता है, जिसमें भगवान् बुद्ध की जीवनी आती है। यह ग्रन्थ बौद्ध-मिश्रित संस्कृत साहित्य का अनमोल रत्न है। इसके अन्तर्गत ललितविस्तरादि ग्रन्थ भी आते हैं। अश्वघोष, बुद्धघोष, शिवस्वामी, कुमारलात, आर्यशूर, हर्षवर्धान, नागार्जुन, मातृचेट् इत्यादि बौद्ध आचार्यों का साहित्य इसके अन्तर्गत उल्लिखित किया जाता है। बौद्ध-संस्कृत साहित्य के अन्तर्गत अत्यन्त मंजुल, भावभरित और अलंकारों से अलंकृत साहित्य की रचना की गई है। महाकवि अश्वघोष की कृतियाँ **बुद्धचरित** और **सौन्दरनन्द महाकाव्य** तो समस्त संस्कृत साहित्य की सर्वोत्कृष्ट रचनाएँ मानी जाती हैं। आचार्य बुद्धघोष का **पद्यचूडामणि (सिद्धार्थचरित)** काव्य संस्कृत साहित्य के अन्तर्गत एक अत्यन्त

उत्कृष्ट रचना है। कश्मीरी कवि शिवस्वामी का **कप्फिणाभ्युदय काव्य** राजा कप्फिण के चरित पर लिखा गया संस्कृत की उत्तम रचना है। क्षेमेन्द्र द्वारा रचित **बोधिसत्त्वावदान-माला** समस्त साहित्य जगत् में मूर्धान्य स्थान पर विराजित होती है। हुएनसांग के मतानुसार, 'अश्वघोष, आर्यदेव, नागार्जुन और कुमारलात–ये चारों साहित्याकाश के 'देदीप्यमान सूर्य' हैं, जिन्होंने विश्व को प्रकाशित किया। यद्यपि बौद्ध संस्कृत साहित्य के अन्तर्गत चम्पू-काव्यों को आधाार मानकर साहित्य प्रणयन नहीं किया गया है, जैसा कि संस्कृत साहित्य के अन्तर्गत इसे एक पृथक् विधा मानकर लेखन किया गया, तथापि यदि इस साहित्य की समीक्षा की जाये, तो इसमें चम्पू-काव्यों के समस्त गुण तथा विशेषताएँ अवश्य ही प्राप्त हो जायेगी। इस श्रेणी में कुमारलात प्रणीत **कल्पना-मण्डतिका,** आर्यशूर विरचित **जातकमाला** और **दिव्यावदान** इत्यादि ग्रन्थ आते हैं। संस्कृत साहित्य में दृश्य-श्रव्यत्वात् रूपक-उपरूपक साहित्य श्रेष्ठ माना जाता है। इस संस्कृत साहित्य के अन्तर्गत दस प्रकार के रूपक तथा अठारह प्रकार के उपरूपक प्राप्त होते हैं। इसमें भी संस्कृत में रचित बौद्ध-साहित्य विशेष उल्लेख प्राप्त करता है। महाकवि अश्वघोष ने दो नाटकों की रचना की थी, जिनका नाम **उर्वशी-वियोग और सारिपुत्रप्रकरण** हैं। उक्त दोनों ग्रन्थ विलुप्त है। सारिपुत्रप्रकरण नाटक खण्डित अवस्था में प्राप्त हुआ था। इस बौद्ध संस्कृत साहित्य की शृंखला में हर्षवर्धन विरचित **नागानन्द नाटक** संस्कृत नाटकों में अपने भाव और कला-पक्ष को लेकर विशेष प्रशंसनीय है। स्वयं राजा हर्षवर्धन ने इस नाटक का मंचन करवाया था, ऐसा उल्लेख प्राप्त होता है। बौद्ध संस्कृत नाटकों में **नालन्दा-दहन** नामक रूपक का भी विशेष स्थान है।

बौद्ध संस्कृत साहित्य के अध्ययन-अवगाहन से ज्ञात होता है कि उस काल में अपने मित्रों अथवा समीपस्थ सुजनों को बौद्ध आचार्यों ने अनेक पत्र समय समय पर लिखा तथा उनका मार्गदर्शन किया था। इस शृंखला में नागार्जुन का उदायिभद्र को लिखा गया सुहृल्लेख, मातृचेट का महाराज कनिष्क को लिखा गया महाराज-कनिष्क-लेख, चन्द्रगोमी का वीररत्न कीर्ति को लिखा गया शिष्यलेख, सज्जन का सूक्ष्मज्ञान को लिखा गया पुत्रलेख, दीपंकर का नयपाल को लिखित विमलरत्न लेख, जगन्मित्रानन्द का राजा जयचन्द के लिए लिखा गया चन्द्रराज लेख तथा चन्द्रगोमी का शिष्यलेख अत्यन्त प्रसिद्ध हुए हैं। इसी शृंखला में जितारी लिखित चित्तरत्न-विशोधनक्रम तथा बोधिाभद्र का गुरुलेख विशेष उल्लेखनीय हैं।

पुराणों में बुद्धधर्म से सम्बद्ध अनेक सन्दर्भ विभिन्न पुराणों में आये हैं। अनेक पुराणों में विविध वर्णनों के प्रसंगों में तथागत भगवान् गौतम बुद्ध के चरित का वर्णन किया गया है। इन पुराणों में भगवान् बुद्ध को विष्णु का दशम अवतार मानकर भी

वर्णन किया गया है। पुराणों में वर्णन आया है कि वैदिक-कर्मकाण्डों में यज्ञादिकर्मों में हिंसा को देखकर भगवान् बुद्ध ने अहिंसा का प्रचार किया तथा अहिंसा का ही सन्देश दिया। पौराणिक साहित्य में भगवान् बुद्ध को सत्संस्कारक कहा गया है तथा विष्णु के अवतार के रूप में बताया गया है। अनेक पुराणों में विष्णु के नवमावतार के रूप में पूजित बुद्ध वर्णन प्राप्त होता है। तद्यथा–**भागवतपुराण (1.3.24), गरुडपुराण (1.1.32, 1.145.40-41), मत्स्यपुराण (47.247), अग्निपुराण (16.1-4), भविष्यपुराण (4.12.26-29), विष्णुपुराण (3.17-18, 3.18. 15-19), कल्कीपुराण (2.3.26), वायुपुराण (12.43-44, 14.39), वराहपुराण (4.3, 113.27), नृसिंहपुराण (36.21)** इत्यादि पुराण भी भगवान् बुद्ध के वर्णनों से युक्त हैं। सुतसंहिता, सुतगीता तथा शंकराचार्य के दशावतार-स्तोत्र में भी भगवान् बुद्ध का वर्णन किया गया है। पुराणों में महान् सम्राट् अशोक तथा अन्य बौद्ध राजाओं का वर्णन भी प्राप्त होता है। इनके विषय में **वायुपुराण (99/332, 55/126, 99/331-32), गार्गी संहिता (युगपुराण, 17), ब्रह्माण्ड-पुराण (74/144-45, 74/144-149), वायुपुराण (99/331-336), मत्स्य पुराण (272/22-26) तथा विष्णुपुराण (अध्याय–24)** में वर्णन प्राप्त होता है। **महाभारत** तथा **रामायण** में भी बौद्धधम्म सम्बद्ध घटनाओं का वर्णन आया है। इसी प्रकार **क्षेमेन्द्र के दशावतारचरित** में बुद्ध के चरित की झाँकी आयी है तथा **जयदेव की अष्टपदी** में बुद्ध-स्तुति की गयी है।

बौद्ध संस्कृत साहित्य के अनुवाद की परम्परा अत्यन्त महती तथा सुदीर्घ है। इस परम्परा के कारण ही आज हमारे पास हमारे हाथ से गई हुई अनमोल ग्रन्थ सम्पत्ति वापस आ पाई है। इस परम्परा में अनेक बौद्ध संस्कृत ग्रन्थों का अनुवाद किया गया, किन्तु इसके साथ ही इसमें प्रसिद्ध संस्कृत ग्रन्थ भी अनूदित हुए हैं।

चीनी विद्वान् लोकक्षेम-कुशान, एन हुआन, झी याओ, कांग मेंग हिआंग, झि किआन, झि युहए, कांग सेंहुई, टान टी, पो येन, धार्मरक्ष, अन फाचीन, पो स्त्रीमित्र, फो तु तेंग तथा बोधिधर्म ने बौद्ध ग्रन्थों के चीनी अनुवाद तैयार किये। इसी प्रकार ज्ञानगुप्त, शिक्षानन्द, प्रज्ञ, संघपाल, धर्मरक्ष, गौतम संघदेव, बुद्धभद्र, धर्मनन्दी, बुद्धयश, धर्मक्षेम, गुणभद्र, बुद्धजीव, परमार्थ, बोधिरुचि तथा प्रज्ञारुचि प्रसिद्ध अनुवादक है, जिन्होंने बौद्ध ग्रन्थों का अनुवाद किया। इस प्रकार बौद्ध संस्कृत वाङ्मय अत्यन्त विशाल तथा सुविस्तृत है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि पालि तथा बौद्ध संस्कृत साहित्य भारतीय इतिहास तथा संस्कृति को जानने हेतु सर्वोत्तम स्त्रोत हैं।

टिप्पणियाँ-

1. पालि साहित्य का इतिहास, भिक्षु धर्मरक्षित, भूमिका
2. पालि साहित्य का इतिहास, भिक्षु धर्मरक्षित
3. दिव्यावदान, (सं.) पी.एल. वैद्य, भूमिका

सन्दर्भ-ग्रन्थ-

1. डॉ. भरतसिंह उपाध्याय, पालि-साहित्य का इतिहास, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 2013
2. बौद्ध संस्कृत काव्य-समीक्षा, डॉ. रामायण प्रसाद द्विवेदी, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, 1976
3. पाण्डे, गोविन्द चन्द्र, *बौद्ध-धर्म के विकास का इतिहास*, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, पञ्चम संस्करण, 2010
4. रीस डेविड्स, टी. डबल्यु., बौद्ध धर्म का इतिहास और साहित्य, अनुवादक—ताराराम, नई दिल्ली: सम्यक प्रकाशन, 2009
5. लाल, अँगने, संस्कृत बौद्ध साहित्य में इतिहास और संस्कृति, लखनऊ: उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, प्रथम संस्करण, 2006
6. वैद्य, पी. एल. (सं.), दिव्यावदान, दरभंगा: मिथिला विद्यापीठ, 1959
7. सांकृत्यायन, राहुल, पुरातत्त्व-निबन्धावली, किताब महल दिल्ली, 1958
8. एन. दत्त, एस्पेक्टस् आफ महायान एण्ड इटस् रिलेशन टू हीनयान, लन्दन
9. सिंह, आनन्द, प्राचीन भारतीय धर्म उद्भव एवं स्वरूप, दिल्ली: हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, प्रथम संस्करण, 2010
10. चीनी यात्रियों के यात्रा विवरण में प्रतिबिम्बित बौद्धधर्म (एक अध्ययन), डॉ. अवधेश सिंह, रामानन्द विद्या भवन, दिल्ली, 1987
11. बुद्धकालीन समाज और धर्म, डॉ. मदनमोहन सिंह, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, नवम संस्करण, 2002
12. बौद्ध साहित्य में भारतीय समाज, डॉ. परमानन्द सिंह, मोतीलाल बनारसीदास, पुनर्मुद्रण, 2016

✦✦✦

दादा भाई नौरोजी का सामाजिक दृष्टिकोण

-डॉ अरविन्द सिंह गौर
सहायक प्राध्यापक (इतिहास)
राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान
श्री रघुनाथ कीर्ति परिसर देवप्रयाग

19वीं शताब्दी का भारत सामाजिक सुधार तथा बौद्धिक जागरण के प्रारंभ का युग है। बौद्धिक जागरण से आशय वे प्रयास हैं, जो तात्कालिक समाज के विरोध और सृजनात्मक मूल्यांकन के उद्देश्य से परिचालित किए गए। ताकि आधुनिक मूल्यों पर समाज का निर्माण किया जा सके। आधुनिक शिक्षा प्राप्त बुद्धि-जीवी वर्ग को इस ओर कार्य करने का श्रेय है। ब्रिटिशों ने अपने शासन को वैध व न्याय पर आधारित साबित करने के लिए 18वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध को अंधकार तथा गतिहीन समाज के रूप में प्रतिविम्बित किया।[1] उन्होंने यह भी प्रमाणित करने की कोशिश की कि प्रौद्योगिकी व वैज्ञानिकता की दृष्टि से भारतीयों ने कोई उपलब्धि अर्जित नहीं की थी और न ही वे कभी अच्छी सरकार देने में समर्थ हुए।[2] परिणामस्वरूप भारतीयों के बुद्धिजीवी वर्ग ने ब्रिटिशों के प्रचार के विरोध में साहित्य, कला, तकनीकी, वास्तुकला, दर्शन आदि के क्षेत्र में भारतीयों द्वारा अर्जित उपलब्धियों को समाज के सम्मुख लाया गया।[3] इन कार्यों के फलस्वरूप जिस नव चेतना का संचार हुआ उसका उद्देश्य भारत में धर्म

---

1. ब्रिटिश इतिहासकार अक्सर लिखते हैं कि ब्रिटेन ने संयोग से भारत में साम्राज्य स्थापित किया और भारत में ब्रिटिश राज्य स्थापित करने की ब्रिटिश सरकार की कोई निश्चित नीति न थी। इस संयोग के सिद्धान्त को जे.आर. सीले कृत "दि एक्सपेंशन ऑफ इंग्लैण्ड" में पहली बार जिक्र किया गया और इस दृष्टिकोण को रैम्जे म्योर तथा अन्य ब्रिटिश इतिहासकारों ने भी स्वीकार किया। रैम्जे म्योर अपनी पुस्तक "दि हिस्ट्री ऑफ ब्रिटिश इण्डिया" में लिखते हैं कि "भारत में ब्रिटिश साम्राज्य बिना किसी योजना के प्राप्त हुआ।" साथ ही, "ईस्ट इण्डिया कम्पनी अपनी इच्छा के विरूद्ध शासक बन बैठी और जब वे शासक बने तब उन्होंने भारतीयों की असीमित सेवा की।"
2. विस्तृत विवरण के लिए देखें-
3. फ्रांसिस जी. हचिन्स, दि इवोल्यूशन ऑफ परमानेन्स, प्रिंसटन, 1967।

के नाम पर व्याप्त बुराइयों को समाप्त कर एक नवीन समाज का निर्माण करना था।[1]

दादा भाई नौरोजी के कार्यों का अवलोकन इस सन्दर्भ में दो आधार पर तर्कसंगत है, एक तो पुनर्जागरण को भारतीय समाज में जाग्रत करने में उनका योगदान तथा दूसरे आधार के अन्तर्गत उनके द्वारा ब्रिटिश शासन के विरुद्ध भारतीयों में राजनीतिक चेतना जाग्रत करने में उनके प्रयत्न। संभवत: दादा भाई नौरोजी प्रथम भारतीय थे जो भारतीयों के सामाजिक, राजनीतिक तथा बौद्धिक उन्नति के उद्देश्य को लेकर संस्थाओं के निर्माण के लिए प्रयासरत रहे। दादा भाई नौरोजी ने देश भक्ति के साथ-साथ अपने जीवन में समान रूप से समाज सुधारक की भी भूमिका निभायी।[2] समाज सुधार के क्षेत्र में पर्दा प्रथा, नारी शिक्षा, पारसी धर्म में सुधार इत्यादि कार्य दादा भाई नौरोजी ने किए।

दादा भाई नौरोजी का काल भारत में आधुनिक बौद्धिकवाद के विकास का काल था, जिसकी केवल इतनी ही उपयोगिता थी कि जीवन के प्रति सकारात्मक आचरण और व्यवहार तथा बुद्धिवादी नजरिया का उद्‌भव हो, अंधविश्वास दूर हो और अतीत के समस्त सांस्कृतिक विचार और सामाजिक संस्थाओं की बुराई की जाए। दूसरे शब्दों में उन संस्कृतियों में जो तत्त्व बहुमूल्य है उन्हें ग्रहण किया जाए तथा आधुनिक संस्कृति में जो अनुचित तत्त्व प्रतीत हो, उनका बहिष्कार किया जाए।[3]

इस बुद्धिवाद के जनक दादा भाई नौरोजी हैं। उन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में विशेषकर नारी शिक्षा के लिए बम्बई में सार्थक कदम उठाए।[4] तात्कालिक समय में यह एक दुष्कर तथा जटिल कार्य था। उनके इन प्रयासों का अशिक्षित वर्ग ने ही नहीं, अपितु आधुनिक शिक्षा प्राप्त वर्ग ने भी कटु आलोचना की।[5] इन लोगों ने जनसाधारण के सामाजिक और सांस्कृतिक पिछड़ेपन के प्रति असहयोग नीति अपनायी।[6] दादा भाई नौरोजी ने नारी शिक्षा प्रचार के दौरान संस्मरणों का उल्लेख करते हुए कहा कि- "जब हम लोग यह सद् विचार लेकर लोगों के यहाँ पहुँचते थे तब लोग अचानक अपना आपा खो बैठते थे और कहते कि आप लोग हमारी बहू-बेटियों को शिक्षित

---

1. राजा राम मोहन राय, केशव चन्द्र सेन, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर इत्यादि ऐसे प्रमुख बुद्धिजीवी थे।
2. विस्तृत विवरण के लिए देखें-
   ए.आर. देसाई, भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, दिल्ली, 1976, अध्याय 13।
3. आर.पी. मसानी, दादा भाई नौरोजी, दि ग्रैण्ड ओल्ड मैन ऑफ इण्डिया, 1939, पृ. 36।
4. ए.आर. देसाई, पूर्वोक्त, पृ. 116।
5. आर.पी. मसानी, पूर्वोक्त, पृ. 44।
6. ए.आर. देसाई, पूर्वोक्त, पृ. 115।

कर मेत्र बनाना चाहते हो, यहाँ से चले जाओ।[1] परन्तु दादा भाई नौरोजी ने इन घटनाओं से हिम्मत नहीं हारी और कहा करते थे कि तिरस्कार, अवमानना ये सभी किसी भी समाज सुधारक तथा सामाजिक कार्यकर्ता के लिए वास्तविक भेंट है और इन्हीं कसौटियों के आधार पर सामाजिक कार्यकर्ताओं की पहचान होती है। उन्होंने समाजसेवियों में धैर्य, प्रयत्न और सहनशक्ति को प्रथम आवश्यकता बताई।[2]

नारी शिक्षा के सन्दर्भ में यहाँ स्पष्ट करना तर्कसंगत होगा कि भारतीय समाज ने विरोध प्रकट कर अंधविश्वास का परिचय दिया। अंग्रेजों ने भी मिशनरी शिक्षा अभियान के लिए इस स्थिति का फायदा उठाना चाहा। चार्ल्स ग्राण्ट की 1792 ई. में "ग्रेट ब्रिटेन की एशिया प्रजा की सामाजिक स्थिति पर टिप्पणी"[3] करते हुए भारत में अंग्रेजी साहित्य तथा धर्म के प्रचार-प्रसार की राय दी। भारतीय समाज ने संभवत: ईसाई धर्म के प्रसार से भयभीत होकर दादा भाई नौरोजी जैसे समाजसेवी के कार्यों का प्रतिकार किया हो। परन्तु दादा भाई नौरोजी परिस्थितियों के समक्ष झुके नहीं, वे अपने विचारों में पूर्ण विश्वस्त थे कि साक्षर माताओं, बहिनों और गृहणियों के बिना समाज में उन्नति तो स्वप्न के समान है, परिवार में ही शान्ति और उन्नति स्थापित नहीं हो पाती है। परिवार की उन्नति के लिए सुगृहणी को प्रमुख माना और एक सुशिक्षित महिला ही सुगृहणी हो सकती है। शिक्षित गृहणियों से पुरुषों तथा समाज को एक नवीन दृष्टिकोण तथा प्रेरणा का परिवेश मिलता है।[4]

दादा भाई नौरोजी ने विपरीत परिस्थितियों में हिम्मत नहीं हारी और नारी शिक्षा के लिए अनवरत प्रयास करते रहे। उन्होंने रूढ़िवादी तथा अंध विश्वासी समाज को दुराग्रही बच्चे की संज्ञा दी और कहा कि एक दो प्रयास करने पर बच्चा अपने दुराग्रह को परिवर्तित कर देता है उसी तरह समाज भी सही मार्ग का अनुसरण करने लगता है। उन्होंने कार्यकर्ताओं से कहा कि चूंकि यह हमारा ही समाज है इसलिए इन कार्यों की सफलता में ही हमारा हित है। इन्हीं विचारों को ग्रहण करने से समाज द्वारा किए गए असहयोग पूर्ण तथा अनुचित आचरण को अपने मार्ग की सफलता में विकसित बाधाएँ मानकर जीवन का हिस्सा बना लेंगे।[5]

---

1. ए.आर. देसाई, पूर्वोक्त, पृ. 115।
2. आर.पी. मसानी, पूर्वोक्त, पृ. 44।
3. वही, पृ. 44-45।
4. चार्ल्स ग्राण्ट, आब्जर्वेशन्स ऑन दि स्टेट ऑफ सोसायटी अमंग दि एशियाटिक सब्जेक्ट्स ऑफ ग्रेट ब्रिटेन, लंदन, 1792।
5. आर.पी. मसानी, पूर्वोक्त, पृ. 44.।

दादा भाई नौरोजी ने नारी शिक्षा के सम्बन्ध में अपनी धारणा को यथार्थ रूप देने का भी प्रयास किया। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने ज्ञान प्रसारक मण्डली स्थापित की, तथा इन विचारों पर खुली बहस की छूट दी। बहराम जी खुरशीद जी गाँधी ने इस मण्डली में नारी शिक्षा से सम्बन्धित एक लेख प्रस्तुत किया, जिसने वाद-विवाद का वातावरण निर्मित किया, फलस्वरूप संस्था के सदस्यों को विवश होकर अनेक व्यावहारिक निर्णय लेने पड़े।[1] दादा भाई नौरोजी ने अपने साथियों के साथ घर-घर जाकर लोगों से प्रार्थना की कि उन्हें अपनी बेटियों, बहुओं को घर से बाहर भेजने की आवश्यकता नहीं है बल्कि अपनी दलानों, बरामदों, द्वारों पर पढ़ाने की व्यवस्था कर दे और पढ़ाने का समय भी खुद ही निश्चित करें।[2] समय के साथ धीरे-धीरे लोगों ने उनके प्रयासों का समर्थन किया और कई घरों में कन्या कक्षाएँ शुरू हो गईं तथा लोगों में बालिकाओं की शिक्षा की भावना विकसित हुई और दादा भाई नौरोजी ने एक कन्या पाठशाला स्थापित की। इसमें कई विद्यार्थी अध्यापन कार्य के लिए आगे आए। स्थान की समस्या का निवारण श्री जगन्नाथ शंकर सेठ ने अपना एक बड़ा घर प्रदान कर किया।[3]

दादा भाई नौरोजी के प्रयासों से नारी शिक्षा का कार्य आरंभ तो हो गया लेकिन पिछड़े समाज में यह परिवर्तन दुष्कर था। दादा भाई नौरोजी ने और अधिक उत्साह तथा तर्क संगत आधारों से लोगों को लड़कियों को स्कूल भेजने की कोशिश की। इससे पूर्व से भी अधिक विरोधी भावनाएँ प्रतिक्रिया स्परूप सामने आईं। रूढ़िग्रस्त हिन्दू और विरोधी पारसियों ने इन कार्यों को शंकापूर्ण दृष्टि से देखा। परन्तु दादा भाई नौरोजी के निरन्तर प्रयत्नों के परिणामस्वरूप कुछ ही माह में 3 हिन्दू तथा 4 पारसी कन्या विद्यालयों के लिए 24 हिन्दू तथा 44 पारसी कन्याओं की व्यवस्था हुई।[4]

इस परिवर्तन से दादा भाई नौरोजी का लोग अब स्वागत-सत्कार करने लगे। बम्बई के तात्कालिक गवर्नर लार्ड फाकलैण्ड ने बम्बई प्रान्त में कन्या स्कूल की स्थापना को शिक्षा के इतिहास में युग परिवर्तनकारी घटना कहा तथा विश्वास किया कि ये स्कूल निकट भविष्य में बहुत उन्नति करेंगे।[5] आगे चलकर इन संस्थाओं के पास न तो धन का अभाव रहा और न ही साधनों का इस तरह बम्बई प्रान्त में नारी शिक्षा के क्षेत्र में सराहनीय और अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई।

---

1. आर.पी. मसानी, पूर्वोक्त, पृ. 45।
2. आर.पी. मसानी, आधुनिक भारत के निर्माता दादा भाई नौरोजी, 1936, पृ. 18।
3. आर.पी. मसानी, पूर्वोक्त, 1936, पृ. 45।
4. आर.पी. मसानी, पूर्वोक्त, 1936, पृ. 19।
5. आर.पी. मसानी, पूर्वोक्त, 1936, पृ. 45।

पर्दा प्रथा का विरोध और स्त्री- पुरुष समानता के प्रतिपादक

ब्रिटिशों की भारत विजय से भारत की सम्पूर्ण सामाजिक गतिविधि तथा परिस्थिति परिवर्तित हो गई। ऐसे परिवेश में कई ऐसे तत्त्वों का उदय हुआ जिन्होंने लोगों में जनतांत्रिक भावनाओं के उदय में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। सामाजिक अस्तित्व के लिए सुधार आंदोलन उदित हुए उनका उद्देश्य भारतीय स्त्रियाँ जो सामाजिक तथा न्यायिक की असमानता से ग्रसित थी, को दूर करना था।[1] स्त्रियों को प्रताड़ित करने वाले कानूनों और रीति-रिवाजों को समाप्त करने की दिशा में जो, सार्थक प्रयास बुद्धिजीवी पुरुष वर्ग ने आरंभ किए, उसमें प्रमुख नाम दादा भाई नौरोजी का है।[2]

महिलाओं की सामाजिक स्थिति में सुधार हेतु दादा भाई नौरोजी ने एक "समाज सुधार" संस्था गठित की। इस संस्था के गठन में मानलजी कुरशेत जी का सहयोग तथा समर्थन प्राप्त हुआ। तत्कालीन पारसी समाज में स्त्री-पुरुषों का एक साथ भोजन उचित नहीं मानते थे और हिन्दू परिवार की स्त्रियों को पर्दा प्रथा का पालन कठोरतापूर्वक करना होता था। "समाज-सुधार" संस्था के सभी सदस्यों ने परिवार की स्त्रियों के साथ ही भोजन करने की शपथ ली और साथ ही साथ भारतीय स्त्रियों को पर्दा प्रथा को छोड़ने की प्रेरणा प्रदान की। इन कार्यों की तथा दादा भाई नौरोजी के कृत्यों की रूढ़िवादी लोगों ने भर्त्सना की। दादा भाई नौरोजी आलोचनाओं से डरे नहीं और कहा कि कई देशों में स्त्रियों को सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त है। इस तरह दादा भाई नौरोजी ने स्त्री-पुरुष समानता की वकालत की, वहीं दूसरी ओर पर्दा प्रथा समाप्त करने के लिए समाज के सामने आए।

दादा भाई नौरोजी का पूर्ण विश्वास था कि सामाजिक सुधार में गतिशीलता के लिए असंख्य अशिक्षित वर्ग को भी साक्षर करने के लिए कदम उठाने होंगे, यह वर्ग समाज के आधार की भूमिका निभाता है और यह वर्ग है समाज का प्रौढ़ वर्ग। प्रौढ़ों के संस्कार परिवर्तित करना बालकों एवं स्त्रियों की तुलना में जटिल होता है। रूढ़िवादिता से प्रौढ़ वर्ग ही अधिक ग्रस्त रहता है और इस प्रौढ़ वर्ग के स्वस्थ्य होने से शेष समाज सरलता से निरोगी हो सकता है। प्रत्येक समाज का अग्रगामी वर्ग प्रौढ़ ही होता हे, इनकी मान्यताओं पर शेष समाज की मान्यताएँ निर्भर करती हैं। प्रौढ़ वर्ग के आगे आने से नई पीढ़ी में परिवर्तन आते हैं।

दादा भाई नौरोजी ने प्रौढ़ शिक्षा के प्रसार के लिए बम्बई की 'ज्ञान प्रसारक मण्डली' का समर्थन लेना आवश्यक समझा और साथ ही साथ इस संस्था के सदस्यों

---

1. आर.पी. मसानी, पूर्वोक्त, 1936, पृ. 46।
2. ए.आर. देसाई, पूर्वोक्त, पृ. 219।

ने दादा भाई नौरोजी के निर्देशन में पूरा विश्वास व्यक्त किया और अपना अभियान आरंभ कर दिया।[1] प्रौढ़ वर्ग की शिक्षा के लिए मुख्य रूप से तीन उपाय व्यवहार में अपनाए गए- घर-घर पहुँचकर प्रेरणा और प्रसार करना सभाओं, भाषणों का सहारा लेना तथा साक्षरता और शिक्षा का प्रयोग करना।

अपने कार्यक्रम के अनुसार दादा भाई नौरोजी अपने सहयोगियों के साथ-साथ प्रत्येक दिन घर-घर पहुँचकर लोगों को शिक्षा की महत्ता और उपयोगिता के बारे में बताते। इस कार्य में अनेक व्यवधानों का सामना करना पड़ा। कई लोगों ने अपने लिए शिक्षा को अनुपयोगी तथा हास्यास्पद कहकर सहयोग नहीं दिया। किन्तु दादा भाई नौरोजी के अनवरत प्रयासों के फलस्वरूप सांयकाल में प्रौढ़ वर्ग के पढ़ने के लिए कक्षाएं आरंभ हुई और पढ़ाने वालों में दादा भाई नौरोजी ही सर्वप्रमुख व्यक्ति के रूप में आए।

दादा भाई नौरोजी ने प्रौढ़ों में शिक्षा प्रसार के साथ सामान्य ज्ञान के विकास हेतु समय-समय पर उपयुक्त जगहों में सभाएं भी आयोजित की। इन सभाओं में बम्बई की 'ज्ञान प्रसारक मण्डली' की तरफ से भी समय-समय पर भिन्न-भिन्न विषयों पर सामान्य ज्ञान हेतु व्याख्यान की व्यवस्था की जाती रही। इनका उद्देश्य प्रौढ़ों में ज्ञान अर्जित करने के लिए इच्छा को और अधिक बढ़ाना था। विभिन्न व्याख्यानों का भारतीय जनता के रीति-रिवाज, विचार में परिवर्तन स्पष्ट होने लगा।[2] प्रौढ़ वर्ग के लिए शिक्षा अभियान सफलतापूर्वक गति पकड़ने लगा और जनता को जागरूक बनाने में महती भूमिका प्रदान की।

पारसी धर्म में सुधार

पारसी समाज व्यापारिक संगठनों के द्वारा अंग्रेजों से अधिक घनिष्ठ था और उनके सम्पर्क के कारण पारसी समाज पर ब्रिटिश प्रभाव अधिक दृष्टिगोचर था। पारसियों में खान-पान, जाति-पाति इत्यादि कुरीतियों से मुक्त थे, फलस्वरूप ब्रिटिशों का सेवा-सत्कार करते थे। पारसी लोगों ने पूर्वी तथा पश्चिमी व्यापार-वाणिज्य में अंग्रेजों के मध्यस्थ की भूमिका निभाई। ब्रिटिशों के प्रत्यक्ष सम्पर्क के कारण पारसी बहुत पूर्व से ही अंग्रेजी भाषा से परिचित था। एलफिन्सटन इन्स्टीट्यूट की कक्षाओं में आरंभिक दौर में पारसी छात्रों की बहुतायत थी। एक तथ्य यह भी है कि 19वीं शताब्दी के अन्तिम समय तक पारसियों की लगभग 1/2 जनसंख्या बम्बई में ही निवासरत् थी।[3]

---

1. ए.आर. देसाई, पूर्वोक्त, पृ. 219।
2. आर.पी. मसानी, पूर्वोक्त, 1936, पृ. 20।
3. वही।

रहनुमाए माजदयासनन सभा

दादा भाई नौरोजी ने 1855 ई. में इंग्लैण्ड जाने से पूर्व लगभग 6-7 वर्ष का समय समाज, शिक्षा, राजनीति और धार्मिक सुधार कार्यों में व्यतीत किया।[1] 1849 ई. से 1855 ई. की अवधि के दौरान बम्बई में प्रत्येक सार्वजनिक कार्य में वे सम्मिलित हुए। भारत में ईरान से आगमन के पश्चात् पारसी वर्ग करीब 1200 वर्षों तक हिन्दू और मुस्लिमों वर्गों के साथ रहा था और इसके फलस्वरूप पारसी धर्म में भी विदेशी धार्मिक रीति-रिवाजों, वैचारिक तत्त्व सम्मिलित हो गए थे जैसे- हिन्दू सम्पर्क से त्यौहारों के दौरान श्रीफल भेंट करना तथा हनुमान जी को तेल चढ़ाना इत्यादि सीख लिये थे। अंग्रेजों से सम्पर्क के पश्चात् अब वे इन हिन्दू रीति-रिवाजों को छोड़ना चाहते थे परिणामस्वरूप जोरोस्थियन धर्म के शुद्धता की बात की और इसी उद्देश्य से सन् 1851 ई. में रहनुमाए माज्दयासनन सभा का गठन किया। इस सभा का प्रधान पारसियों के धर्म की पुरातन शुद्धता की स्थापना करना था। नौरोजी फरदून जी इस सभा के सभापति थे। लोगों ने फरदून जी को 'जनता का रक्षक' के नाम से विभूषित किया था।[2]

एलफिन्स्टन इन्स्टीट्यूट के शिक्षित पारसी नवयुवकों ने मिलावटी धर्म को पैगम्बर जुरथुस्त्र का पवित्र धर्म स्वीकार करने से मना किया और मिलावटी तत्त्वों को समाप्त करना अपना पावन कार्य निर्धारित किया। इस निर्धारित उद्देश्य में सफलता प्राप्त करने के निमित्त इन शिक्षित युवाओं में "सुधारवादी नवयुवकों का दल" स्थापित किया।[3] परन्तु इन युवाओं के लिए कट्टरपंथियों को अपने विचारों में सामंजस्य लाना एक दुष्कर कार्य था। पारसी समाज के जिन पूर्व प्रचलित नियमों व रीतियों को अपने धर्म का अंग मानकर चल रहे थे, उन्हें सुधारवादी युवा किस तरह शुद्धिकरण के लिए राजी करेंगे, यह एक जटिल समस्या थी परन्तु सुधारवादी नवयुवकों ने दृढ़ संकल्पित होकर शांतिपूर्ण उपायों का अनुसरण कर अपने उद्देश्य की प्राप्ति में निरन्तर प्रयासशील रहे। सुधारवादी नवयुवकों के निरन्तर प्रयासों के फलस्वरूप पारसी धर्म में मिलावटी तत्वों को दूर किया गया और जोरोस्थियन धर्म अपनी पूर्व शुद्धता और पवित्रता के साथ समाज के समक्ष प्रस्तुत हुआ।

रास्तगुफ्तार का प्रकाशन

दादा भाई नौरोजी ने सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्र में प्राप्त आशातीत सफलताओं से अत्यधिक उत्साहित होकर महसूस किया कि अपनी बात को अधिक

---

1. ई. कुलके, दि हिस्ट्री ऑफ पारसीज, पृ. 35।
2. वही, पृ. 92।
3. आर.पी. मसानी, पूर्वोक्त, 1936, पृ. 21।

से अधिक व्यक्तियों तक पहुँचाने के लिए एक समाचार-पत्र हो। अपने पावन कार्य को साकार करने के लिए उन्होंने धनी वर्ग के व्यक्तियों से सहायता की अपील की। दादा भाई नौरोजी की अपील कारुणिक और राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत थी, फलस्वरूप शीघ्र बम्बई के कामा भाइयों ने समाचार-पत्र के लिए धन उपलब्ध कराने का वचन मिला।[1] 15 नवम्बर, 1851 ई. को दादा भाई नौरोजी ने कामा भाइयों के समर्थन से रास्तगुफ्तार (सत्य वक्ता) नामक समाचार-पत्र गुजराती भाषा में प्रकाशित किया।[2] दादा भाई नौरोजी ने अवैतनिक सम्पादक की भूमिका इस समाचार पत्र में निभाई। इस समाचार-पत्र ने सामाजिक, राजनैतिक तथा नैतिक सुधारों के प्रति आवाज उठाई और समाज में नवचेतना की भावना जाग्रत की। यद्यपि तत्कालीन भारत में गुजराती भाषा में अन्य समाचार-पत्रों का प्रकाशन भी हो रहा था परन्तु उनका उद्देश्य सरकार की नीतियों का समर्थन व चापलूसी करना था।[3] दादा भाई नौरोजी ने रास्तगुफ्तार पत्र में अनेक लेख लिखे तथा एलफिन्सटन इन्स्टीट्यूट के शिक्षित युवाओं ने भी दादा भाई नौरोजी को अपना समर्थन तथा प्रकाशन के लिए अनेक लेख भेजे।

दादा भाई नौरोजी ने जनता में समाचार-पत्र की प्रतियाँ मुफ्त वितरित करने के लिए खुरशेद जी नरसवानजी कामा को मना लिया। दादा भाई नौरोजी के निरन्तर प्रयत्नों का यह परिणाम था कि जनता में राजनीतिक जाग्रति के साथ-साथ अन्याय, अंधविश्वास, अज्ञानता, रूढ़िवाद जैसी बुराइयों की बुनियाद समाज में कमजोर पड़ने लगी। रास्तगुफ्तार की लोकप्रियता दिनोदिन जनता में बढ़ती जा रही थी, दादा भाई नौरोजी की यह एक बड़ी सफलता थी। जनता में इस समाचार पत्र की बढ़ती मांग के कारण जनवरी, 1852 ई. से हर रविवार (साप्ताहिक) को प्रकाशित किया जाना आरम्भ किया।[4]

19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के अन्य सुधार आंदोलनों के समय दादा भाई नौरोजी के सामाजिक और धार्मिक आंदोलन अपनी हदों तथा शिथिलताओं से अवरोधित हुए। उनके सुधार एक हद तक पारसी समाज तक पहुँच रखते थे। लेकिन यह स्पष्ट कर देना प्रासंगिक होगा कि दादा भाई नौरोजी के सामाजिक, धार्मिक तथा शैक्षणिक क्षेत्रों में प्राप्त उपलब्धियों का वास्तविक अवलोकन तात्कालिक विषम परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में करना होगा। तत्कालीन भारत में भारतीय राष्ट्रवाद परिपक्व अवस्था में नहीं था अतः उनके द्वारा सामाजिक-सुधारों के लिए उठाए गए कार्यों में धर्म का

---

1. ई. कुलके, पूर्वोक्त, पृ. 96।
2. आर.पी. मसानी, पूर्वोक्त, 1936, पृ. 62
3. वही।
4. वही।

प्रवेश स्वाभाविक ही था। अपनी कमजोरियों के पश्चात् भी दादा भाई नौरोजी द्वारा प्राप्त किए गए योगदान की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। दादा भाई नौरोजी जैसे समाजसेवियों और प्रतिभा के धनी व्यक्तियों ने मध्यकालीन संगठनों की दुराग्रहपूर्ण व्यवस्थाओं में कील ठोकने का प्रयास कर दरार डालने का प्रयास किया और इसमें सफल भी हुए।[1] संभवत: प्रथम बार, धर्म और समाज सुधार की भाषा में ही सही, भारतीय राष्ट्रीय जागरण का जनता में संचार होने लगा।

इस तरह दादा भाई नौरोजी ने अपने जीवन में समाज के कई क्षेत्रों में सराहनीय तथा उल्लेखनीय कार्य सम्पादित किए। वर्तमान भारत में यदि मुम्बई की वर्नाक्यूलर प्रेस देश में सर्वाधिक सफल है, वर्तमान भारत में यदि स्त्री-शिक्षा के क्षेत्र में मुम्बई उन्नत अवस्था में है, वर्तमान भारत में यदि पश्चिमी राज्य में देश के अन्य क्षेत्रों की बजाय समाज सम्बन्धी सुधार और विकास अधिक गतिमान है तो उसका प्रमुख कारण दादा भाई नौरोजी के आजीवन प्रयास व त्याग है।

✦✦✦

1. ए.आर. देसाई, पूर्वोक्त, पृ. 191-93, तथा पृ. 224-225।

ऐतिहासिक आलोक में गढ़वाली लोकगाथा साहित्य : संक्षिप्त दृष्टि

-डॉ. वीरेंद्र सिंह बर्त्वाल

असिस्टेंट प्रोफेसर-हिंदी, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान,
श्री रघुनाथ कीर्ति परिसर, देवप्रयाग, उत्तराखंड

साहित्य समाज का दर्पण होता है। ठीक इसी प्रकार इतिहास अतीत का दर्पण होता है। इतिहास इस बात का साक्षी होता है कि कब क्या और कैसे हुआ। गढ़वाल का इतिहास स्वयं में गौरवमयी है। वेद-पुराण हमें इतिहास के रूप में गढ़वाल के अतीत की जानकारी देने में महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं। यहां का लोकगाथा साहित्य और अनुश्रुतियां भी हमें गढ़वाल के बीते समय के दर्शन कराते हैं। इन सबसे हमें ज्ञात होता है कि गढ़वाल की धरा धर्म-अध्यात्म के क्षेत्र में बड़ी उर्वरा रही है।

गढ़वाली लोकगाथाएं यहां घटित अनेक महत्त्वपूर्ण घटनाओं को आख्यायित करती हैं। उत्खननों से मिले अनेक साक्ष्य इस भूमि को देवताओं की कर्म और शरण स्थली प्रमाणित करते हैं। ब्रह्वर्त, आर्यावर्त, हिमवान, इलावर्त नामों से ख्यात इस केदारखंड की धरती के महत्त्व के दृष्टिगत अनेक देशी-विदेशी विद्वानों और प्रकृति प्रेमियों ने यहां की यात्राएं कीं। अनेक विद्वानों और जिज्ञासु लोगों ने यहां के इतिहास, लोकसंगीत पर शोध किया है। विभिन्न जातियों की कर्मस्थली और अधिवास रहे इस हिमालयी क्षेत्र में इन जातियों ने अपने चिह्न छोड़े हैं, जिनके कारण यहां एक विशेष संस्कृति का अभ्युदय हो गया। ऐसी संस्कृति, जिसमें मनुष्यों को ही नहीं, देवी-देवताओं को भी आकर्षित करने की क्षमता है।

गढ़वाल में प्राचीन काल से कोल, किरात, भिल्ल, तंगण, खस, यक्ष और आर्य जातियों ने निवास किया है। इनके कुछ निशान आज भी गढ़वाल के खान-पान, रहन-सहन और पूजा-पद्धति तथा संस्कारों में विद्यमान हैं।

गढ़वाल की प्राचीन जातियों मे कोल, किरात, पुलिंद, तंगण तथा खस प्रमुख हैं। केदार मंडल खस मंडल से पहले किरात मंडल था।[1]

---

1. राहुल सांस्कृत्यायनः हिमालय परिचय, पृ-51

प्रागैतिहासिक काल में यह क्षेत्र यक्ष, कोल, किरात, भिल्ल, तंगण, नाग, खस आदि जातियों से संबद्ध रहा है। इन जातियों का उत्तर पाषाणकालीन संस्कृति के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। यही यहां के मूल निवासी थे। खसों और आर्यों के प्रवेश के साथ इनका पराभव होता गया, किंतु इनकी संस्कृति उनको भी ग्रहण करनी पड़ी। गढ़वाल में प्रचलित तंत्र-मंत्र, रखवाली, झाड़फूंक, वृक्ष पूजा की जीववादी प्रवृत्ति तथा व्यक्ति के सिर पर देवता अवतारने की गीत-नृत्यमयी पद्धति को इन्हीं की देन माना जाता है।[1]

गढ़वाल का धार्मिक एवं राजनीतिक इतिहास समृद्ध और असंदिग्ध है। यहां शिव, कृष्ण, श्रीराम, पांडवों के अतिरिक्त अनेक लौकिक देवी-देवता गढ़वाल के इतिहास में स्थान बनाए हुए हैं। यद्यपि श्रीकृष्ण, शिव, देवी और पांडवों की तुलना में यहां राम को गाथाओं में स्थान नहीं मिला है, किंतु अनेक ऐतिहासिक तथ्य प्रमाणित करते हैं कि श्री राम और सीता का संबंध गढ़वाल से रहा है। डॉ. डबराल की पुस्तक "उत्तराखंड के पशुचारक" का संदर्भ देते हुए डॉ. शिवानंद नौटियाल ने लिखा है कि रामचंद्र जी ने वृद्धावस्था में देवप्रयाग में तपस्या की थी। राम का एकमात्र मंदिर यहीं है। देवप्रयाग से मिली हुई पट्टी सितोनस्यूं है। इस पट्टी के फलस्वाड़ी गांव के मैदान में इगास (कार्तिक माह की एकादशी) के दूसरे दिन मनसार का मेला लगता है। मेले की कथा के अनुसार जब राम ने सीता को वन में निर्वासित किया था तो लक्ष्मण सीता को कुटी तक छोड़ आए थे। यह कुटी देवप्रयाग से दो मील पर है। सीता को छोड़ने पर लक्ष्मण मूर्च्छित हो गए थे। आज भी देवल गांव में लक्ष्मण का मंदिर है। सीता यहीं रहने लगी थी। कोट का महादेव मंदिर तब वाल्मीकि आश्रम था। जब राम का अश्वमेध यज्ञ का घोड़ा यहां से गुजरा तो लव और कुश ने उसे रोक लिया। राम को आना पड़ा। लव-कुश को उन्होंने अपना लिया और सीता को पुनः साथ चलने को कहा। समीपवर्ती गांव वालों ने सीता को द्रोण कंडी (बेटी को ससुराल विदा करते समय दिया जाने वाला अन्न व अन्य सामग्री) देकर भेजना चाहा। मनसार के पास सीता ने धरती से कहा कि मां यदि मैं पतिव्रता हूं तो मुझे गोद में समा ले। पृथ्वी फट गई। सीता का पृथ्वी प्रवेश इगास के दूसरे दिन हो गया। राम ने सीता के बाल पकड़ने चाहे, परंतु उनके हाथ बाल ही आए। भेजने वालों को उन्होंने अपनी तथा सीता की स्मृति में सीता के बाल दिए। आज भी प्रतिवर्ष लड़की को ससुराल भेजने की पूरा प्रथा के अनुसार समीप के सारे गांव वाले उस दिन द्रोण कंडी व कपड़ा-लता मनसार के मेले में लाते हैं। सितोनस्यूं की देवी सीता ही है। उसी के नाम पर इस पट्टी का यह नाम पड़ा।[2]

---

1. डॉ. गोविंद चातकः गढ़वाली लोकगाथाएं (सामान्य परिचय)
2. डॉ. शिवानंद नौटियालः गढ़वाल के लोकनृत्य-गीत, पृ-18 (भूमिका भाग)

स्वतंत्रता से पहले गढ़वाल में राजतंत्र व्यवस्था थी। यहां की सत्ता छोटे-छोटे गढ़ों में विभाजित थी। सत्ताओं के लिए संग्राम होना सामान्य बात थी। गढ़वाल के मध्यकाल पर दृष्टिपात करें तो इसमें सत्ता को लेकर बड़ी उथल-पुथल रही। सामंत दूसरे की सत्ता हथियाने को आतुर रहते थे। सामंतों की इस मृगतृष्णा और होड़ का परिणाम जनता ने भुगता। वह दौर एक प्रकार से संघर्षों का समय था। सामंत अपने राज्य विस्तार एवं दूसरे का राज्य हथियाने की प्रतिस्पर्धा में परस्पर लड़ते रहते थे। तब एक प्रकार से 'शक्तिशाली की पौ बारह' क सिद्धांत लागू था। तब सत्ता और सुरक्षा के लिए शूर-वीरता अनिवार्य थी। टिहरी रियासत पर पंवार राजाओं का लंबे समय तक शासन रहा।

पंवार शासकों का स्पष्ट इतिहास 1500 ई. से ही मिलता है। इस समय राजा अजयपाल पूरे गढ़वाल पर शासन करने लगे। वह पंवार वंश का 37वां राजा माना गया है। उसने यहां छोटे-छोटे गढ़ों को एक कर उन पर शासन आरंभ किया था। पंवार वंश के अंतिम शासक राजकुमार मानवेंद्र शाह रहे। वे साठवें शासक रहे।[1]

पंवार वंश के शासन काल में भी गढ़वाल को अपने अस्तित्व के लिए भोट, कुमाऊं, सिरमौर और दिल्ली के शासकों से जूझना पड़ा। गढ़वाल और भोट का संघर्ष तो कत्यूरी शासन के समय ही शुरू हो गया था। पंवार शासन काल में दापा (तिब्बत) के शासक यहां लूट-पाट करते थे। राजा मानशाह ने दापा नरेश को हराकर प्रतिवर्ष एक चौसिंग्या खाडू (मेढ़ा) और सवा सेर सोना देते रहने की संधि की थी।[2]

देखा जाए तो गढ़वाल का मध्यकाल संघर्षों से सराबोर रहा। कभी संघर्ष सत्ता, सत्ता विस्तार, सत्ता सुरक्षा के लिए होते रहे तो कभी सुंदरियों को लेकर रक्तपात हुए। यही संपूर्ण वर्णन गढ़वाली लोकगाथाओं में है। गढ़वाली लोकगाथाएं लोक में मात्र मनोरंजन का साधन नहीं, अपितु यहां के इतिहास की मौखिक संवाहक एवं साक्षी भी हैं। इनमें यहां के प्राचीन वैभव, सत्ता-संघर्ष, भड़ों के प्रणय-शौर्य के साथ ही कृष्ण, पांडवों जैसे देवताओं के व्यक्तित्व एवं कार्यों का विशद् वर्णन समाहित है।

इतिहास के परिप्रेक्ष्य में इन गाथाओं का अवलोकन किया जाए तो स्पष्ट होता है कि अधिकांश गाथाओं मे वर्णित-उल्लिखित पात्रों-स्थानों के नाम इतिहास से मेल खाते हैं। गाथाओं में वर्णित अनेक घटनाएं इतिहास सम्मत ही हैं। धार्मिक गाथाएं जहां गढ़वाल से श्रीकृष्ण-पांडवों के संबंधों का उद्घाटन करती हैं, वहीं पवाड़े एवं प्रेमगाथाएं मध्यकालीन गढ़वाल के सामंतों, भड़ों की शूरता और प्रणय संबंधों का

---

1. पं. हरिकृष्ण रतूड़ी: गढ़वाल का इतिहास, पृ-194 (संपादक-डॉ. यशवंत सिंह कठोच)
2. डॉ. रणवीर सिंह चौहान: उत्तराखंड के वीर भड़, पृ-259

विवरण प्रकट करती हैं। इनमें तत्कालीन राजनीतिक व्यवस्था एवं विभिन्न राजाओं के परस्पर संबंधों का भी वर्णन मिलता है।

गढ़वाली लोकगाथाओं के अंतर्गत जागरों और पवाड़ों में देवी-देवताओं, भड़ों-वीरों का जो व्यक्तित्व एवं कृतित्व दृष्टिगोचर हुआ है, उसे इतिहास भी व्यक्त करता है। यद्यपि गाथाओं में कुछ घटनाएं इतिहास से कुछ परिवर्तित प्रतीत होती हैं, किंतु सत्य का अंश उनमें भी विद्यमान है। जागरों में पांडवों एवं कृष्ण से संबद्ध अनेक गाथाएं महाभारत वर्णित घटनाओं के समान हैं। विवश, पराजित पांडवों का वन गमन करना, वहां अनेक कष्ट झेलना, कौरवों द्वारा पांडवों के विरुद्ध विभिन्न षड्यंत्र रचना, द्रौपदी का अर्जुन के साथ स्वयंवर पद्धति से विवाह करना, अर्जुन का युद्ध की विभीषिका को लेकर भयभीत होना, कृष्ण द्वारा अर्जुन को युद्ध के लिए प्रेरित करना आदि घटनाएं गाथाओं में महाभारत में वर्णित घटनाओं जैसी ही हैं। अतः अनकी प्रामाणिकता संदिग्ध नहीं हो सकती है।

पांडवों का गढ़वाल से घनिष्ठ संबंध रहा है, यह बात असंदिग्ध है। डॉ. शिवानंद नौटियाल के अनुसार निर्विवाद सत्य है कि पांडवों का गढ़वाल में ही अधिक समय बीता। महाभारत के संभव पर्व का संदर्भ देते हुए उन्होंने उल्लेख किया है कि पांडव बदरीनाथ धाम के पास पांडुकेश्वर में पैदा हुए थे।[1] द्रौपदी का जन्म गढ़वाल में ही हुआ और इनका बचपन गढ़वाल में ही बीता।[2]

गढ़वाली जागरों में श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व और कृतित्व का वही वर्णन है, जो महाभारत, श्रीमद्भागवत और गीता में है। गढ़वाल क्षेत्र में नागराजा के रूप में पूजित श्रीकृष्ण को अनाथों का नाथ कहा गया है। उन्हें 'राण्यों को रौंसिया, फूलों को हौंसिया' अर्थात् रसिक प्रवृत्ति का दर्शाया गया है।

वीर-भड़ माधो सिंह भंडारी की गाथा को ऐतिहासिक पुष्ट करने के लिए माधो सिंह द्वारा बनवाई गई सुरंग अथवा नहर (गूल) आज भी विद्यमान है। माधो सिंह ने कीर्तिनगर के निकट मलेथा गांव में पानी पहुंचाने के लिए कठोर चट्टानों को काटकर यह सुरंग बनाई थी। गाथाओं और जनश्रुतियों में वर्णन आता है कि माधो सिंह ने बड़े परिश्रम के साथ सुरंग तो बनाई, परंतु उसमें पानी आगे नहीं गया। उसने सुरंग के स्रोत पर पुत्र बलि दी, तब जाकर पानी आगे गया।

इतिहास साक्षी है कि गढ़वाल के राजा महिपत शाह के शासन काल (1629-1646 ई.) में दापा के सरदार का गढ़वाल की सेना से संघर्ष हुआ था। तब

---

1. डॉ. शिवानंद नौटियालः गढ़वाल के लोकनृत्य-गीत, पृ-19 (भूमिका)
2. गोविंद प्रसाद नौटियालः तपोभूमि बदरिकाश्रम, पृ-20

माधो सिंह इस राजा (महिपत शाह) का मंत्री था। माधो सिंह ने दापा नरेश के सैनिकों को खूब खदेड़ा था। उसने तिब्बत और गढ़वाल की सीमा निर्धारित कर वहां मुंडेरे (चबूतरे) चिनवाए थे, जो आज भी सीमा पर मौजूद बताए जाते हैं।[1]

तीलू रौतेली का पवाड़ा भी इतिहास की कसौटी पर खरा उतरता है। कत्यूरियों के अत्याचार का विरोध करते हुए उसने अपने पिता, दो भाइयों, मंगेतर और ससुर की मौत का बदला लेते हुए चार वर्ष तक दस युद्ध लड़े थे। उसकी दो सहेलियां भी इन लड़ाइयों में मारी गईं। तीलू ने अंत में विजय प्राप्त कर ली, लेकिन एक शत्रु ने छिपकर तीलू पर प्रहार कर दिया। परिणामस्वरूप वह वीरगति को प्राप्त हो गई।

डॉ. नौटियाल ने लिखा है कि कत्यूरी के राजा धामशाही ने गढ़वाल के राजा मानशाही को पराजित कर खैरागढ़ को अपनी अधीन कर लिया था।.....कत्यूरों के अन्याय से गढ़वाली सरदार दु:खी होकर विद्रोह में जुट गए थे। विद्रोही सरदारों में तीलू का पिता भुपू गोरला भी एक प्रमुख था, जो विद्रोह करते हुए सराई खेत नामक स्थान पर कत्यूरों द्वारा मारा गया। खटली के कांडा (जहां अब ऐतिहासिक मेला लगता है) नामक स्थान पर भुपू के दोनों बेटे भी मारे गए। तीलू तब पंद्रह वर्ष की थी।[2]

गढ़ू सुमरियाल/गढ़ु सुम्याल/ हंसा कुंवर/क्षेत्रपाल के पवाड़े में भी ऐतिहासि प्रामाणिकता है। गढ़ु सुमरियाल की भिन्न-भिन्न गाथाओं में कुछ पात्रों के नाम यद्यपि अलग-अलग हैं, लेकिन कथानक में समानता है।

जीतू बगड्वाल का पवाड़ा प्रणय संबंधों के साथ इतिहास को भी इंगित करता है। जीतू की गाथा में उसके राजा मानशाह से संबंध होने का वृतांत है। मानशाह ने उसे कमीण का जामा दिया था। राजा ने एक बार चिट्ठी लिखकर उसे राजधानी श्रीनगर बुलाया और अपना दीवान नियुक्त किया था। इतिहास में मानशाह का शासन काल 1591 से 1610 ई. तक उल्लिखित है।[3]

गंगू रमोला की गाथाओं के नायक गंगू रमोला का संबंध द्वारिकाधीश श्रीकृष्ण से जोड़ा गया है। उसका काल (1325-1425 ई.)[4] बताया गया है।

---

1. हरिकृष्ण रतूड़ी: गढ़वाल का इतिहास, पृ-185
2. डॉ. शिवानंद नौटियाल: गढ़वाल के लोकनृत्य-गीत, पृ-198
3. पं. हरिकृष्ण रतूड़ी: गढ़वाल का इतिहास, पृ-207 (संपादक-डॉ. यशवंत सिंह कठोच)
4. डॉ. रणवीर सिंह चौहान: उत्तराखंड के वीर भड़, पृ-77

(यह शोध पत्र आधुनिक विभाग की शोध पत्रिका 'आधुनिक शोध त्रिवेणी' में प्रकाशन के लिए 18 अप्रैल, 2018 को भेजा गया।)

सारांशत: ऐतिहासिक आलोक में यदि गढ़वाली लोकगाथाओं पर दृष्टिपात करें तो स्पष्ट होता है कि इनमें कल्पना-कला के साथ ऐतिहासिक तत्त्व एवं तथ्य भी समाविष्ट हैं। गाथाएं धार्मिक अनुष्ठान-आयोजन का भाग होती हैं और इनका उद्देश्य मनोरंजन होता है, इसलिए गाथाकारों ने कभी इनके ऐतिहासिक तथ्यों की ओर ध्यान नहीं दिया है। परिणामस्वरूप अनेक गाथाओं का ऐतिहासिक आवरण धूमिल हो चुका है, किंतु इनकी आत्मा से ऐतिहासिकता विलुप्त नहीं हुई है। कहा जाना चाहिए कि गढ़वाली लोकगाथाओं में वास्तविक घटनाओं, पात्रों, स्थानों संबंधी तथ्य जोड़ने के उपरांत उनमें कल्पना, अत्युक्ति, स्थानीयता, कला का आवरण ओढ़कर लोकमानस तक पहुंचाया गया है।

✦✦✦

उत्तराखण्ड का सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्वरूप : एक ऐतिहासिक अवलोकन

-डॉ० धनेन्द्र कुमार

स० प्राध्यापक (इतिहास विभाग),
रा०महा०वि०चिन्यालीसौड़ (उत्तरकाशी)

गंगा यमुना के स्रोत हिमालय प्रदेश उत्तराखण्ड का भारतीय संस्कृति धर्म और आध्यात्म के क्षेत्र में प्राचीन काल से ही महत्वपूर्ण योगदान रहा है। मध्य हिमालय में अवस्थित यह भू-भाग अपने प्राकृतिक सौन्दर्य सांस्कृतिक परम्परा और पुरातात्विक सम्पदा की दृष्टि से सदैव अग्रणी रहा है। यह क्षेत्र अपने विशिष्ट भौगोलिक एवं सामरिक परिवेश के कारण सम्पूर्ण भारत के लिए श्रद्वा और आकर्षण का केन्द्र रहा है। यह राज्य एक सीमान्त राज्य है। इसकी सीमायें पूर्व में नेपाल एवं उत्तर में चीन एवं तिब्बत (चीन) से मिली हुयी है हिमाचंल प्रदेश एवं उत्तर प्रदेश इसकी अन्तर्राज्यीय सीमाओं में स्थित राज्य है।

पुराणों में उत्तराखण्ड के गढवाल सम्भाग को केदारखण्ड एवं कुमाऊँ को मानसखण्ड के नाम से जाना जाता है। उत्तराखण्ड की संस्कृति विकसित एवं समृद्ध है। कश्मीर को यदि धरती का स्वर्ग कहा जाता है तो उत्तराखण्ड हिमालय की महत्ता भी कुछ कम नहीं है। आदिकाल से इसे देव भूमि के नाम से जाना जाता है। वस्तुतः गंगा एवं हिमालय तो भारत की पहचान ही है। उत्तराखण्ड में ही हिन्दुओं के सभी देवी देवताओं के निवास स्थान एवं तीर्थ है।

विश्व विख्यात फूलों की घाटी, पहाडों की रानी मसूरी, सरोवर नगरी नैनीताल, कौसानी, मुन्स्यारी, पूर्णागिरी, बिनसर, रानीखेत, लैंन्सडौन, हेमकुण्ड, पाताल भुवनेश्वर, धर्मनगरी हरिद्वार, ऋषिकेश एवं उत्तराखण्ड के चार धाम यमुनोत्री, गंगोत्री, केदारनाथ एवं बद्रीनाथ सहित कई अनेक यहाँ पर पर्यटन क्षेत्र एवं धार्मिक नगर हैं। यही देव भूमि प्राचीन मनीषियों की तपस्थली रही है। उत्तराखण्ड के वर्तमान समाज में शहरों में आधुनिकता देखने को मिलती है वही ग्रामीण समाज में भी आधुनिकता एवं रूढिवादिता का समिश्रण देखने को मिलता है। यहाँ का समाज ब्राह्मण, क्षत्रिय,

शिल्पकार तथा जनजातिय समूहों में बंटा हुआ है इन सभी समूहों में जाति भेद पाया जाता है। वैश्य समूह का उत्तराखण्ड के मूल समाज में अभाव है, यद्यपि वर्तमान समय में वैश्य जातियां बाहर से आकर निवास करने लगे हैं।

वैसे उत्तराखण्ड समाज का विस्तार लगभग 11वीं 12वीं सदी के पश्चात् हुआ इससे पूर्व कोल किरात एवं खश जैसे आदिवासी जातियों का वर्चस्व था। इन जातियों की सामाजिक संरचना सरल थी इसमें कट्टरता भी कम थी परन्तु 11वीं 12वीं सदी के पश्चात उत्तराखण्ड में बाहरी जातियों विशेषकर ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों का आगमन प्रारम्भ हुआ वो अपने साथ जातिय कट्टरता का बीज उत्तराखण्ड की भूमि पर बोने लगे। चन्द वंश एवं पंवार वंश के शासकों ने नवागन्तुक जातियों को प्रश्रय देने में कोई कंजूसी नहीं दिखाई। ये दोनो वंश कत्यूरी वंश के शासको का अंत कर अपना शासन स्थापित करने में सफल हुये थे।[1] वास्तव में बाहर से आयी जातियों को यहाँ बसाना उनके लिये राजनीतिक रूप से आवश्यक था। उस समय के राजाओं के द्वारा नवांगतुक जातियों को भूमि दान में दी गई, नई आयी जातियों ने स्थानीय जातियों से मित्रता एवं सामाजिक व्यवहार किया धीरे-धीरे स्थानीय एवं बाहर से आयी जातियों के मध्य व्यवहार बढा, जो बाद में शनै-शनै निकटता बढ़ती गई और बाद में आचार व्यवहार में इनमें अन्तर कर पाना मुश्किल हो गया। बीसवी शताब्दी के प्रारम्भिक दशको में यहाँ के समाज में अस्पृश्यता का बोल बाला था। यहाँ का सवर्ण समाज नहीं चाहता था कि शिल्पकार समाज उनकी किसी भी प्रकार की बराबरी करें समाज में शिल्पकारों को बहुत से सामाजिक अधिकार प्राप्त नहीं थे।[2] शिल्पकारों को कोई सामाजिक अधिकार नही था इनके पानी के नल अलग होते थे। इनके लिए मन्दिरों में प्रवेश निषेध था तथा इनके बच्चों के लिए स्कूल की व्यवस्था न थी। सरल शब्दों में कहें तो यह समाज का उपेक्षित वर्ग था लेकिन स्वतन्त्रता के बाद यहाँ के शिल्पकारों को उनका अधिकार मिलना प्रारम्भ हुआ तथा धीरे-धीरे यहाँ के सवर्ण एवं शिल्पकार वर्ग में सौहार्द्र पूर्ण भावना दिखाई देने लगी।

पूरी बीसवीं शताब्दी सामाजिक आन्दोलनों से गुंजायमान है एक ओर इन आन्दोलनों ने उत्तराखण्ड को राष्ट्रीय संग्राम के साथ जोड़ा, तो दूसरी तरफ यहाँ के

---

1. जोशी घनश्याम : उत्तराखण्ड का राजनीतिक सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, प्रकाश बुक डिपो बरेली , 2011, पृ० 166
2. कुमार धनेन्द्र : शिल्पकारो के मसीहा स्व० बलदेव सिंह आर्य (एक ऐतिहासिक अवलोकन) संस्कृति शोध पत्रिका वाराणसी, 2013 पूर्णांक -12 पृ० 36

ज्वलंन्त प्रश्नों को उठाया और उनके समाधान के लिये प्रयास किया।[1] एक तरफ स्वतन्त्रता आन्दोलन चल रहा था तो दूसरी तरु यहाँ के हिन्दु समाज का अभिन्न अंग शिल्पकार समाज अपने ही समाज से आन्तरिक सामाजिक अधिकार पाने के लिये प्रयासरत था। उत्तराखण्ड के प्रमुख तात्कालीन नेताओं ने जिनमें से श्री भैरव दत्त धुलिया, छवाण सिंह नेगी, प्रताप सिंह नेगी, जगमोहन सिंह नेगी, कृपाराम मिश्र मनहर, जयानन्द भारती, बलदेव सिंह आर्य, राम प्रसाद बहुगुणा, गोकुल सिंह नेगी, रुद्र दत्त पांथरी आदि जो की समाज सुधारक एवं स्वतन्त्रता संग्राम के पुरोधाओं ने समाज की एकता पर विशेष बल दिया तथा उत्तराखण्ड की सामाजिक विषमता को पाटने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया।

वर्तमान समय में उत्तराखण्ड के समाज में जातिगत भेदभाव पूर्व काल की अपेक्षा कम है पर है उत्तराखण्ड में अनेक स्थानों में जन जातिया भी निवास करती हैं। इनमें भोटिया, थारू, बुक्सा, जौनसारी, राजी इत्यादि प्रमुख है। उत्तराखण्ड के लोग शान्ति प्रिय सरल एवं सहज-प्रकृति के होते है। उनके स्वभाव के अनुरूप ही उनका खान पान भी सामान्य है। भोजन में गेहूँ दाल, चावल, सब्जी फल, घी इत्यादि का उपभोग करते है क्षत्रिय एवं शिल्पकार लोगों का मांस भी भोजन का अंग है। परन्तु बाह्मणों में मांस अधिक लोकप्रिय नहीं है।[2] उत्तराखण्ड में यद्यपि आज आधुनिकता की छाप देखने को मिल रही है। आज की नई पीढ़ी चाऊमिन, पिज्जा, बर्गर, मोमो जैसे फास्ट फूड को पंसद करती है। लेकिन आज भी उत्तराखण्ड के ग्रामीण परिवेश में मुडुवा की रोटी बडि, फांणू, कोदा, झंगोरा, कंडाली का साग काली दाल के पकोडी, पिनालू, थिच्वाणी की सब्जी गहत की दाल चेस्वाणी, भटवाणी, स्वांला पकोडा ऐरसा को काफी पसन्द किया जाता है। पेय पदार्थ में चाय उत्तराखण्ड की प्रमुख पेय पदार्थ है। यहाँ जब भी कोई मेहमान गाँव में किसी के घर जाता है तो पानी न पूछकर सबसे पहले चाय दी जाती है।

अब उत्तराखण्ड में पारम्पिरिक पोशाकों का प्रचलन कम हो गया है। यहाँ अब आधुनिकता एवं फैशन दिखायी देता है, ग्रामीण क्षेत्रों में थोडा सा लगाव परम्परागत वेशभूषा के प्रति दिखाई देता है। उत्तराखण्ड की महिलायें आभूषणों से बेहद लगाव रखती है। शादी विवाह इत्यादि समारोह में यहाँ टिहरी की नथ को पहना जाता हैं। जो कि बेहद प्रसिद्व है।

---

1. पाठक शेखर : उत्तराखण्ड एक समग्र जन इतिहास का ताना बाना पहला आचार्य शिवप्रसाद डबराल स्मारक व्याख्यान श्रीनगर उत्तराखण्ड 5 अक्टूबर 2007, पृ० 80
2. जोशी घनश्याम : उत्तराखण्ड का राजनीतिक सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास प्रकाश बुक डिपो बरेली 2011, पृ० 169

उत्तराखण्ड की ग्रामीण महिलाओं की ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि के अध्ययन से पता चलता है कि यहाँ पर महिलाएँ घर की सम्पूर्ण जिम्मेदारी के साथ ही पुरूषों के साथ कदम-कदम पर सामाजिक सांस्कृति एवं राजनैतिक गतिविधियों में भाग लेती रही हैं। राजा राम मोहन राय का मानना था कि स्त्रियाँ कभी भी बुद्वि और योग्यता की दृष्टि से पुरुषों से कम नही होती।[1] इसी तरह उत्तराखण्ड राज्य प्राप्ति के लिये यहाँ के लोगों ने भागीरथ प्रयास किया जिनमें यहाँ की महिलाओं की भी अतुलनीय भूमिका रही। पहाड़ की नारी अपने कठोर परिश्रम हंसमुख स्वभाव एवं सहन शीलता, विनम्रता सरलता एवं त्याग की प्रतिमूर्ति है। हम कह सकते हैं कि वे उत्तराखण्ड के सामाजिक जीवन का आधार-स्तम्भ हैं।

भौगोलिक स्थिति अलग होने के कारण यहाँ पर विकास की गति धीरे थी। अत: यहाँ के आर्थिक विकास का सपना स्वतन्त्रता के बाद भी अधूरा रह गया था। आर्थिक रूप के पिछड़ेपन के विरूद्व शनै-शनै जनता विभिन्न मंचों से आक्रोश व्यक्त करती रही। पृथक उत्तराखण्ड राज्य आन्दोलन इसी कारण उपजा था और नवम्बर 2000 में अलग उत्तराखण्ड राज्य प्राप्त करने में सफल रहा।[2] 9 नवम्बर 2000 को उत्तराखण्ड राज्य अलग राज्य बना। आज यह राज्य दिन प्रतिदिन तरक्की की राह पर नये आयाम स्थापित कर रहा है। फिर भी यहाँ की जो मूलभूत समस्या अब जो है वह है पलायन लोग अपने घर-बार, घर-कुठार छोड़कर आधुनिकता की दौड़ में शामिल होकर हर कोई देहरादून बसना चाह रहा है इस पलायन को रोकना यहाँ की सरकार के लिए सबसे बडी चुनौती है। यदि गाँव में शिक्षा एवं चिकित्सा की समुचित व्यवस्था की जाये तो शायद पलायन में रोक लगे।

आज जरूरत है कि यहाँ के पर्यटक क्षेत्र को विकसित किये जाएं उत्तराखण्ड न सिर्फ भारतीयों को बल्कि विश्व भर के पर्यटकों को अपनी और आकर्षित करता है। हिन्दू मिथकों में पाँच की संख्या शुभ मानी जाती है। पंच केदार और पंच बदरी के समान पंच प्रयाग भी है। इनमें सबसे प्रमुख देवप्रयाग है। यहाँ भागीरथी एवं अलकनन्दा के संगम से वृहद गंगा नदी बनती है। यहाँ प्राचीन रघुनाथ मन्दिर है जो भगवान राम को समर्पित है। यहाँ के पंडा पुरोहित ही तीर्थ यात्रियों को बदरीनाथ की यात्रा कराते हैं। चार अन्य प्रयागों में रुद्रप्रयाग (मंदाकनी-अलकनन्दा के संगम)

---

1. खुराना एवं चौहान : भारतीय इतिहास में महिलायें, प्रकाशक लक्ष्मी नारायण अग्रवाल आगरा, 2014-15 पृ० 55
2. धस्माना योगेश : उत्तराखण्ड में जन जागरण और आन्दोलनों का इतिहास, विनसर पं० देहरादून 2006, पृ० 272

कर्णप्रयाग (पिण्डर और अलकनन्दा संगम) नन्द प्रयाग और अलकनन्दा से और विष्णु प्रयाग (बिष्णु गंगा और अलकनन्दा संगम है। बदरीनाथ के तीर्थ यात्री इन पाँच प्रयागों से पूजा अर्चना करके आगे बढ़ते हैं। जिससे उनकी यात्रा सफल हो जाती है। बदरी केदार क्षेत्र समस्त हिन्दू जगत के लिये भी महत्व रखता है। हिन्दू धर्म के विभिन्न मतावलम्वी अपनी आस्था को सुदृढ़ करने आते हैं और सांस्कृतिक एकता का परिचय देते हैं। अदभुत संयोग वश वैष्णवों का बद्रीनाथ शैवों का केदारनाथ शाक्तों का कालीमठ यंही विद्यमान है यही नही, सिखों का पवित्र गुरुद्वारा हेमकुण्ड साहब होने से यह स्थली राष्ट्रीय एकता का परिचायक बन गयी है।[1] हिन्दू धर्म के आस्था का प्रतीक उत्तराखण्ड के धामों में प्रतिवर्ष लाखों श्रद्धालु आस्था एवं श्रद्धा से आते हैं। मई जून के माह मे जब स्कूलो के बच्चों की गर्मी का अवकाश रहता है उस समय यहां पर्यटक एवं तीर्थ यात्री सबसे अधिक आते हैं।

इसी परिप्रेक्ष मे हरिद्वार मे बृहस्पति का पांचवी राशि सिंह मे तथा सूर्य के मेषस्थ होने पर अर्द्धकुम्भ का योग होता है। अतः पूर्ण कुम्भ के 6 वर्ष के पश्चात यहां अर्द्धकुम्भ मनाने की परम्परा है।[2] कुम्भ एवं अर्द्धकुम्भ में लाखों की संख्या में श्रद्धालु हरिद्वार में आते हैं। तथा हरिद्वार मे हरि की पौडी पर डुबकी लगाते है। इसी तरह उत्तराखण्ड के अन्य दो प्रमूख धाम गंगोत्री एवं यमुनोत्री मे भी यात्री एवं श्रद्धालु पहुंचते हैं। गंगोत्तरी धाम ऋषिकेश से लगभग 275 कि०मी० की दूरी पर स्थित है। श्री गंगोत्तरी मंदिर के पवित्र कपाट बैशाख शुक्ल अक्षय तृतीय को खुलते है और दीपावली के एक दिन बाद अन्नकूट के दिन बन्द होते हैं।

उत्तरकाशी की बडकोट तहसील के अर्न्तगत यमुनोत्री तीर्थ स्थित है। यहां पर यमुना माता पृथ्वी पर अवतरित हुयी थी। यमुना का उदगम स्थल बन्दरपुंछ बताया जाता है। जो वस्तुतः तीन शिखरों का सम्मुचय है। नीलकंठ बंदरपुँछ तथा जमुनोत्री कांठा। प्राचीन साहित्य के अवलोकन से पता चलता है कि यमुना कालिन्दी गिरी पर्वत से निकली है। ऋषिकेश से धरासू मोड से बडकोट से आगे जानकी चटटी तक बस सुविधा है। इसी द्वारा सफर होना है जहां से 5 कि० मी० की दुर्गम पैदल यात्रा करनी पड़ती है।

उत्तराखण्ड मे जहां असंख्य देवी-देवताओं के मंदिर है वही प्रकृति की गोद मे यहा हिमालय प्रदेश अपनी प्राकृतिक सुन्दरता के लिए भी जाना जाता है। इस

1. रावत सी०पी०एस० : लोक आस्था का प्रतीकः गढ़वाल के महोत्सव, गढ़वाल और गढ़वाल-2, सम्पादक एस०डी० तिवारी गणेश खुगशाल 2001 पृ० 70
2. वही

सांस्कृतिक क्षेत्र मे धार्मिक उत्सव लोकगीत लोक नृत्यों में महाभारत कालीन प्रभाव देखने को मिलता है। सांस्कृतिक विरासत की दृष्टि से उत्तराखण्ड की मेला संस्कृति समृद्ध एवं पौराणिक दृष्टि से वैभवशाली है। सामाजिक वर्ण व्यवस्था के अनुसार अनेक त्यौहार पर्व होते है। मेले पर्व उत्सव और त्यौहार हमारी परम्परागत संस्कृति के अभिन्न अंग हैं जो हमारे जीवन में आन्नद और मनोरंजन का संचार करते है। इन्ही मेलो उत्सवों त्योहारों एवं पर्वों से हमारे लोक तत्त्व की अभिव्यक्ति होती है।

उत्तराखण्ड में मेलों के आयोजन की बहुत पुरानी परम्परा है नन्दादेवी मेला अल्मोड़ा के नन्दा देवी परिसर में लगता है। नैनीताल में भी कर्क तथा मकर संक्रन्ति पर नन्दादेवी के मन्दिर में मेला आयोजित होता है। श्रावणी मेला अल्मोडा के जागेश्वर धाम में प्रतिवर्ष श्रावण में एक माह तक चलता है। सोमनाथ मेला अल्मोडा के रानीखेत के पास रामगंगा के तट तट पर स्थित पाली पछाऊँ क्षेत्र में बैशाख के माह में होता है। स्याल्दे विखोती मेला प्रतिवर्ष द्वारहाट अल्मोडा में बैशाख माह के पहले विखोती मेला व पहली रात्री को स्याल्दे मेला लगता है। पूर्णगिरी मेला चम्पावत के टनकपुर के पास अन्नपूर्णा शिखर स्थित श्री पूर्णागिरी मन्दिर में प्रतिवर्ष चैत्र व आश्विन की नवरात्रियो में मेले लगते हैं।[1] इसी तरह बग्वाल मेला जौलजीवी मेला पिथौरागढ बैकुण्ठ चर्तुदशी मेला श्रीनगर गढवाल, चन्द्रबदनी मेला विकास मेला इत्यादि मेले आयोजित होते हैं।

आज मेलों के स्वरूप में अन्तर आ रहा है। आधुनिकता के कारण उनके मनाने में अन्तर आ रहा है। आज उनमें रूढियों अन्धविश्वासों से छुटकारा पाने की ललक है। विसंस्कृतिकरण के कारण उनमें विकृतियो के दर्शन भी होते हैं इन दोनो के मध्य जुडे मेलो में सामाजिक सरोकारों को नकारा नही जा सकता।[2] पर जो भी हो यह मेले त्योहार एवं उत्सव हमारे निरस जीवन में नये रक्त का संचार करते है। तथा हमें अपनी परम्परागत संस्कृति को जोड़ने में सहायक होते हैं।

उत्तराखण्ड में प्रचलित धर्म में लोक शास्त्रीय अवयवों का संयोजन है। यहां की लोक संस्कृति में प्रेतवाद प्रकृतिवाद अंधविश्वास के वर्चस्व के साथ वैदिक धर्म की प्राचीनता और मौलिकता का समन्वय लोक धर्म से स्थापित करने का प्रयास किया गया है। जैसा कि भारतीय धर्म और संस्कृति पर लिखने वाले विद्वानो द्वारा वेदों को

---

1. उत्तराखण्ड, परीक्षावाणी, पृ० 187
2. तिवारी एस० डी० : मेला संस्कृति: पारम्पारिक सार्थकता एवं प्रासांगिकता, गढवाल और गढवाल-2, 2001 पृ० 81

मानक रूप में प्रयोग करते हुये धार्मिक विश्वास को उसी कसौटी पर विश्लेषित किया गया है।[1] हमारी उत्तराखण्डीय संस्कृति में पारस्परिक धार्मिक आस्था एवं विश्वास की भावना सतत् बढ़ती हुयी नजर आती है। आज यदि देखा जाय तो अपनी परम्परागत खान-पान, रहन- सहन, मेले, उत्सव, त्यौहार लोक संगीत, लोक गीत, एवं स्थानीय उत्पादकों को बचाये रखने एवं इन्हे संजोये रखना हमारे लिए एक कठिन चुनौती है।

✦✦✦

1. नेगी शन्तन सिंह : उत्तराखण्ड के इतिहास का आधार ग्रंथ : दि हिमालय डिस्ट्रक्ट्स ऑफ नार्थ वेस्टर्न प्रोविन्सेज ऑफ इण्डिया, (आचार्य शिवप्रसाद डबराल चारण स्मृति व्याख्यान) 15-16 अक्टूबर 2012 पृ० 15

उत्तराखण्ड आन्दोलन के आर्थिक कारकों में वन सम्पदा की स्थिति का अवलोकन

-डॉ० अर्चना डिमरी

आमंत्रित व्याख्याता, इतिहास विभाग

कन्या गुरूकुल परिसर, देहरादून

उत्तराखण्ड आन्दोलन के लिए जिन कारकों का योगदान रहा, उनमें आर्थिक कारक सबसे महत्वपूर्ण माना जा सकता है। किसी देश, प्रदेश की उन्नति के पीछे सबसे बड़ा योगदान आर्थिक समृद्धि का होता है। उत्तराखण्ड क्षेत्र प्राकृतिक संपदा के रूप में सम्पन्न होने के बावजूद आर्थिक रूप से सम्पन्न नहीं रहा। दूसरे अर्थ में यहाँ की प्राकृतिक संपदा ही इस क्षेत्र के शोषण का कारण बन गई।

प्राकृतिक संपदा को वैज्ञानिक आधार पर दो वर्गों में विभाजित किया गया है। पहली वो जिनको नवीनीकरण संसाधन के रूप में जाना जाता है जैसे-भूमि, जल, वन जिनका प्रयोग कर नवीनीकरण कर सकते हैं। दूसरी वो जिनका प्रयोग एक बार ही होता है जैसे खनिज सम्पदा इन्हें विशेष संसाधन कहते हैं।[1] उत्तराखण्ड क्षेत्र में जंगल, जड़ी-बूटी तथा जल की प्रचुर मात्र में उपलब्धता थी।[2] परन्तु अव्यवहारिक प्लानिंग के तहत इन संसाधनों का दोहन या कहें शोषण किया गया क्योंकि दोहन तो सीमित होता है।[3] प्राकृतिक संसाधनों के अलावा इस क्षेत्र में बहुत से तीर्थ तथा सैलानियों के लिये स्थल है जिससे पर्यटन उद्योग को बढ़ावा मिलता, परन्तु उसे भी समृद्ध लोगों के हाथों में सौंपने की बात होने लगी। यहाँ के लोगों को आर्थिक रूप से कमज़ोर करने के लिए शराब माफियाओं ने शराब वहाँ तक पहुँचायी जहाँ पर बिजली, जल,

---

1. डॉ. बिष्ट नारायण सिंह, उत्तराखण्ड हिमालय की अर्थ व्यवस्था पृ. 45-46, प्रथम भाग, प्रकाशक-भागीरथी प्रकाशन गृह, सुमन चौक, टिहरी गढ़वाल- 249001।
2. उप्रेती प्रभात, एकाधिकार में पहचान खोती क्षेत्रीयता में संघर्षरत उत्तराखण्ड पृ. 18, गोपेश प्रकाशन विलम्बपुर भवन चीना खान, अल्मोड़ा।
3. भेंटवार्ता- पंवार प्रीतम सिंह (विधायक श्री यमुनोत्री सीट 03) दिनाँक- 11/05/02 शनिवार 7.00 P.M. स्थान- चिन्यालीसौड बड़ेथी में।

सड़क व अन्य बुनियादी सुविधायें न पहुँच पायी। आश्चर्य की बात तो यह देखने में आयी कि जहाँ पर गाड़ी नही जानी थी वहाँ तो रास्ते बन गये और जहाँ रास्ते बनने थे वो वीरान ही रहे।[1]

वन संसाधन

उत्तराखण्ड हिमालय की अर्थ-व्यवस्था में वनों का सर्वोपरि स्थान है। यह सबसे बड़ी प्राकृतिक सम्पत्ति का भण्डार है। जिसके बिना उत्तराखण्ड का सारा आर्थिक जीवन समाप्त हो जायेगा। अगर हम यह कहें कि उत्तराखण्ड के जनमानस का जीवन वनों से जुड़ा है तो यह ग़लत नहीं होगा। यहाँ की अर्थ व्यवस्था में आखेटक, संग्राहक, पशुपालक और कृषक चारों तत्व एक साथ विद्यमान माने जा सकते हैं। उत्तराखण्ड हिमालय में ब्रिटिश काल से ही वनों के दोहन (शोषण) का रूप देखने में आता है। ब्रिटिश सरकार तथा टिहरी की राजशाही दोनों ने आर्थिक उपार्जन के लिए आज़ादी से पूर्व वनों का निर्ममतापूर्ण शोषण किया। पहाड़ों में वन ही उनके लिए 'कुबेर के भंडार' साबित हुये।[2] ब्रिटिश शासकों के द्वारा इस क्षेत्र की वन सम्पदा का जमकर उपयोग करने के कारण इस क्षेत्र में वनों का ह्रास होना जो शुरू हुआ वो स्वतन्त्रता के पश्चात भी नहीं रूका।[3] टिहरी नरेशों के शासन काल के समय वनों का आर्थिक स्त्रोत के रूप में सर्वप्रथम प्रयोग मि. विल्सन नामक एक अंग्रेज़ शिकारी ने किया था। जिसने जंगली जानवरों को मारने, उनकी खाल पंख व चर्बी बेचने की अनुमति ली थी।[4] सन् 1850 में विल्सन की प्रथम लीज़ समाप्त हुई, परन्तु उसने पुनः बहुत ही कम 400 रुपये सालाना पर लीज़ ले ली। उसने देवदार तथा चीड़ के वृक्षों को काटकर उनको स्लीपरों के रूप रेलवे विभाग को बेचना शुरू किया। विल्सन ने लकड़ी की ढुलाई के लिए एक नई विधि की शुरुआत की उसने लकड़ियों को नदियों के बहाव के द्वारा मैदानों में पहुँचाया।[5] विल्सन की द्वितीय लीज़ की समाप्ति राजा भवानी शाह के शासन काल में सन् 1864 में हुई। इसके पश्चात ब्रिटिश सरकार ने 20 वर्ष (सन् 1865-85) के लिए 10,000 में सरकार ने वनों का

---

1. उप्रेती प्रभात पृ. 18।
2. डॉ. डंगवाल, किरन, चिपको आन्दोलन और नारी शक्ति (हिमालय में पर्यावरण संरक्षण एवं महिला जागृति, पृ. 141, विनसर पब्लिकेशन कम्पनी।
3. बिष्ट, आनन्द सिंह, वन जागे वनवासी जागे, पृ. 11, उत्तराखण्ड सेवा निधि, अल्मोड़ा।
4. मेहरा, सुरेन्द्र सिंह, मध्य हिमालय की रियासतों में शासन प्रबन्ध और समाज (टिहरी गढ़वाल रियासत के सन्दर्भ में) पृ. 174 तक्षशिला प्रकाशन।
5. द एनुअल एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट ऑफ टिहरी गढ़वाल स्टेट, फॉर द इयर 1939-40, पृ. 24-25।

उद्योग चलाने हेतु ठेका विल्सन को ही दिया।[1] टिहरी रियासत में वन विभाग की नियमावली के अनुसार, राज्य के समस्त वन राज की व्यक्तिगत सम्पत्ति माने जाने लगे। कोई भी व्यक्ति वन्य वस्तु को अपने अधिकार में नहीं रख सकता था और अगर किसी व्यक्ति को यह अधिकार मिलता भी था तो वह राजा की 'विशेष कृपा' के अन्तर्गत आता था। जो थोड़ी बहुत सुविधायें वनों में जनता को दी गई थी उन्हें भी राजा जब चाहे ख़त्म कर सकता था।[2] इस प्रकार जब वनों पर आधारित नियम तथा उन्हें लीज़ पर देने की प्रक्रिया शुरू हुयी तो जनता को वनों का महत्व समझ में आने लगा। वनों पर आधारित करों आदि से भी जनता बहुत आहत हुई और शायद यही कारण था कि सन् 1860 के बाद जब कभी जन आन्दोलन हुये वे वन-नीति से प्रभावित रहे।[3] टिहरी के राजा ने सन् 1939-42 के विश्व युद्ध के समय ब्रिटिश सरकार की इमारती लकड़ियों के निर्यात के माध्यम से सहायता की। राजा द्वारा ब्रिटिश सरकार को कुल 1,43,66,831 C.ft. इमारती लकड़ियों का निर्यात हुआ।[4] इस कार्य हेतु गढ़वाल व कुमाऊँ के वनों का तेजी से ह्रास हुआ। कागज़ के उत्पादन में वृद्धि के लिये बाँस तथा बावड़ घास का कटान भी भारी मात्रा में किया गया।[5] वनों के तेज़ी से हो रहे ह्रास के कारण, जनता का आक्रोश बढ़ता गया। वनों की रक्षा के लिये अंग्रेज़ों के काल में कई बार आन्दोलन हुये। जिसमें टिहरी रियासत के अधीन क्षेत्रों में कई वन आन्दोलन हुये। जिसमें कुर्मांचल केसरी श्री बद्रीदत्त पाण्डे और अनुसूया प्रसाद बहुगुणा ने वनों के अधिकारों की रक्षा के लिए ब्रिटिश सरकार को ललकारा था। और टिहरी रियासत में यमुना घाटी के क्षेत्र में स्थानीय ग्रामीणों ने अपनी तेरह सूत्री वन अधिकारों की मांग के लिए समानान्तर सरकार बनाई थी। उत्तराखण्ड के तिलाड़ी के मैदान 30 मई सन् 1930 को राजा की फौज ने निहत्थे लोगों पर गोलियाँ बरसाई थी। इस गोला बारी में शहीद हुये लोगों की याद में आज भी 30 मई को 'वन-दिवस' के रूप में मनाया जाता है।[6] तिलाड़ी कांड के समय हुई गोलाबारी से बचने के लिए लोगों ने यमुना नदी में छलाँग लगा दी थी।[7] यमुना नदी का पानी

1. बिजल्वाण, राधेश्याम 'रँवाल्टा'- मध्य हिमालय की रियासत में ग्रामीण जन संघर्षों का इतिहास (रियासत टिहरी गढ़वाल 'धाड़ा' व 'ठंडक'- पृ. 8। बिजल्वाण प्रकाशन पुरोला, उत्तरकाशी।
2. डॉ. डंगवाल, किरन, पूर्वोक्त, पृ. 33।
3. मेहरा, सुरेन्द्र सिंह, पूर्वोक्त, पृ. 172।
4. रावत अजय एस., एडमिनिस्ट्रेटिव हिस्ट्री ऑफ उत्तराखण्ड, पृ. 124। इनडस पब्लिकेशन।
5. डॉ. डंगवाल, किरन, पूर्वोक्त, पृ. 78।
6. बिष्ट, आनन्द सिंह, पूर्वोक्त, पृ. 11।
7. रावत, अजय, पूर्वोक्त, पृ. 166।

खून से लाल हो गया था। बड़कोट नयार गाँवों के घरों में आज भी गोलियों के निशान दिखाई पड़ते हैं। बाद में नरेन्द्र शाह ने इग्लैण्ड से जज़ों को बुलाया, जिन्होंने आन्दोलनकारियों को कठोर सजाएँ दी थी।[1] तिलाड़ी काण्ड से पूर्व भी टिहरी रियासत में कई वन नियम सम्बन्धी आन्दोलन हुये। जिसमें- (1) रँवाई व कडाकोट के जन संघर्ष (सन् 1901) (2) कुंजणी वन ढंडक (सन् 1904-05) (3) खासपट्टी का वन ढंडक (सन् 1906-07) (4) सकलाना वन ढंडक (सन् 1911-13) (15) कडाकोट, ढुंगासेट का ढंडक (द्वितीय) सन् 1920-25) में सभी आन्दोलन प्रमुख रूप से राजा कीर्तिशाह के शासनकाल में हुये।[2] परन्तु इन आन्दोलनों का प्रभाव वन नियमों पर कुछ खास नहीं पड़ सका। इसके उदाहरण के लिये अगर हम देखें तो शासकों ने अपनी स्वार्थपूर्ति हेतु वनों का उपयोग जारी रखा। गढ़वाल कुमाऊँ के वनों का सन् 1916, 1921 तथा 1931 में जान-बूझकर या अनजाने में लगाई गयी आग से भारी नुकसान हुआ। चीड़ के वन जिससे लीसे का उत्पादन होता था, विशेष रूप से नष्ट हुये और वर्षों तक पर्वतीय लोगों को मिलने वाली आजीविका का एक स्थानीय साधन अवरूद्ध रहा। सन् 1916 में गढ़वाल का वन क्षेत्रफल 33,01,000 एकड़ आंका गया था, जो कि मूर्खतापूर्ण वन विनाश से तथा सरकार द्वारा ग़लत कदम उठाये जाने से सन् 1947 में केवल 30 वर्ष में ही गढ़वाल के वनों का क्षेत्रफल 20,54,707 एकड़ ही रह गया यानि 30 प्रतिशत घट गया।[3] इस प्रकार स्वतन्त्रता से पूर्व वन व्यवस्था का विभिन्न रूप देखने में आता है जो ब्रिटिश सरकार तथा शासकों ने अपने फायदे हेतु बना रखी थी। श्री बद्रीदत्त पाण्डे ने कुमायुँ-गढ़वाल में वन-व्यवस्था को तीन चरणों में विभक्त किया।[4]

प्रथम चरण- सन् 1815 से सन् 1878 तक रहा। जिसमें सन् 1856 में यत्र-तत्र वन 'रक्षित' किये गये। सन् 1875 से 3700 वर्ग मील तक फैले हुये वनों पर वन विभाग का अधिकार हो गया। सन् 1868 में भाबर के वन 'संरक्षित' घोषित किये गये। सन् 1877 में उन्हें 'सुरक्षित' घोषित किया गया।

द्वितीय चरण- सन् 1973 से सन् 1893 तक रहा। जिसमें सन् 1878 में जंगलात कानून में संशोधन किया गया। सन् 1882 में वन विभाग को इम्पीरियल

---

1. सकलानी, हेमचन्द्र, विरासत को खोजते हुए (उत्तराखण्ड के यात्रा वृतांत) पृ. 23, शब्द-संस्कृति प्रकाशन, देहरादून।
2. डॉ. बिजल्वाण, राधेश्याम, पूर्वोक्त, पृ. 80।
3. डबराल, शिव प्रसाद, उत्तराखण्ड का इतिहास भाग- 7, पृ. 304-312, वीरगाथा प्रकाशन।
4. पाण्डे बद्रीदत्त, कुमाऊँ का इतिहास, पृ. 468-469। श्याम प्रकाशन, श्री अल्मोड़ा बुक डिपो, अल्मोड़ा

(केन्द्रीय) विभाग में रखकर प्रान्तीय विभाग बना दिया गया। सन् 1885 से सन् 1890 तक कुछ वन लोहा-कम्पनियों को दे दिये गये। कुछ जंगल चाय बागानों के लिये दिये गये। सन् 1886 और सन् 1890 के बीच कई वन 'संरक्षित' किये गये। जिन्हें बाद में 'सुरक्षित' घोषित किया गया।

तृतीय चरण- सन् 1893 से शुरू होकर ब्रिटिश काल के अन्त तक रहा (यानि 1947 तक) इसमें जनता को विशेष कष्ट उठाना पड़ा। सन् 1894 में देवदार, चीड़ कैल, साल, शीशम, तुन और खैर आदि के वृक्षों को 'सुरक्षित' घोषित किया गया, उन्हें राजकीय वृक्ष कहा जाने लगा। इन वृक्षों को कोई व्यक्ति अपनी नाप भूमि में भी बिना अनुमति के नहीं काट सकता था। स्वतन्त्रता के पश्चात भी वन नीतियों में कुछ खास परिवर्तन न करते हुये वनों के दोहन की प्रक्रिया होती रही। वनों के अविवेकपूर्ण कटान से पर्यावरणीय संतुलन तथा मौसम पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ने के साथ ही क्षेत्र के वनोपज भी दुष्प्रभावित हुये। इस तथ्य की पुष्टि तालिका में दर्शाये गये आंकड़ों से हो जाती है-[1]

तालिका

वर्ष	इमारती लकड़ी (हज़ार घन मी.)	जलाने की लकड़ी (हज़ार घन मी.)	लीसा (हज़ार कुन्तल)	बांस रिंगाल (लाख)
1	2	3	4	5
1984-85	671	638	134	124
1985-86	704	628	136	125
1986-87	686	619	43	180
1987-66	683	611	85	162
1988-89	699	527	94	149
1989-90	486	268	105	149
1890-91	444	266	110	130

अत: जनता में असन्तोष बढ़ता ही रहा फलस्वरूप 'चिपको आन्दोलन' हुआ। चिपको आन्दोलन के शुरूआती क्रम में जब वन विभाग ने एक तरु तो ग्रामीणों के परम्परा से अंगू की लकड़ी से बनाये जाने वाले जुआ एवं अन्य कृषि यन्त्रों के लिए

1. उत्तर प्रदेश वार्षिकी 1992-93, पृ. 94, लव वर्मा निदेशक, सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उत्तर प्रदेश द्वारा प्रकाशित

लकड़ी देना मना किया परन्तु दूसरी तरफ विदेशी मुद्रा अर्जित करने के लिए बहुत बड़े पैमाने पर अंगू आदि पेड़ काटने की अनुमति दे दी जिससे जन भावनायें भड़क उठी। और इस प्रकार वन और जन विरोधी नीति का विरोध शुरू हुआ। जिसके फलस्वरूप अहिंसक तरीके से वृक्षों को बचाने के लिये उस पर चिपकने की शुरूआत हुई।[1] चिपको आन्दोलन में तहलका मचाने की प्रख्यात घटना मार्च, सन् 1974 में सीमान्त जनपद चमोली के 'रैंणी' गाँव में हुयी थी। जिसमें पुरुषों की अनुपस्थिति में 'श्रीमती गौरा देवी' के नेतृत्व में 'चिपको पद्धति' को अपना कर महिलाओं ने रैंणी गाँव के वन को भारी विनाश से बचाया।[2] रैंणी घटना के बाद वन विभाग के मार्च योजना के कटान को रूकवा दिया गया जिसमें कुछ कार्य-योजना इस प्रकार की थी-

क्र.सं.	वन प्रभाग का नाम	कार्य योजना में प्रस्तावित कटान का वर्ष विकासखण्ड	कटान रद्द हुआ (कुल हेक्टेयर में)
1.	बद्रीनाथ वन प्रभाग	1973-74 दशोली- 7	689.4
2.	बद्रीनाथ वन प्रभाग	1974-75 दशोली- 7	1319.0
3.	बद्रीनाथ वन प्रभाग	1975-76 दशोली- 6-7	1247.7
4.	बद्रीनाथ वन प्रभाग	1976-77 दशोली- 7	1679.3
5.	बद्रीनाथ वन प्रभाग	1977-78 दशोली- 6	1501.2
6.	बद्रीनाथ वन प्रभाग	1978-79 दशोली- 10	1350.6
7.	बद्रीनाथ वन प्रभाग	1979-80 दशोली- 9-8	2374.3
8.	बद्रीनाथ वन प्रभाग	1980-81 नन्दाकिनी- 1	1969.2
9.	बद्रीनाथ वन प्रभाग	1981-82 नन्दाकिनी- 1	757.9
10.	बद्रीनाथ वन प्रभाग	1982-83 नन्दाकिनी- 1	118.5

इस प्रकार महिलाओं द्वारा चिपको आन्दोलन चलाये जाने के कारण कई क्षेत्रों से वन कटान का कार्य रोका गया। महिलाओं ने कई वनों से पेड़ों को कटने से बचाया। वनों पर आधारित उद्योगों की स्थापना कर इस क्षेत्र की ग़रीबी तथा बेकारी की समस्या का समाधान निकाला जा सकता है। वनों पर आधारित प्रमुख उद्योग निम्न प्रकार से हो सकते हैं- (1) कागज व लुगदी उद्योग (2) कत्था उद्योग (3) लीसा

1. भट्ट, चण्डी प्रसाद, अधूरे ज्ञान एवम् काल्पनिक विश्वास पर हिमालय से छेड़खानी घातक, पृ. 7, प्रकाशक-दशोली ग्राम स्वराज्य मण्डल, गोपेश्वर (चमोली)।
2. डॉ. डंगवाल किरन, चिपको आन्दोलन और नारी शक्ति, पूर्वोक्त, पृ. 65।

पर आधारित टरपेन्टाइन उद्योग (4) फर्नीचर उद्योग प्लाई व हार्डबोर्ड उद्योग (5) खेल का सामान बनाने का उद्योग (6) जड़ी-बूटियों से औषधि निर्माण का उद्योग (7) दियासलाई, धूप-अगरबत्ती उद्योग (रंगों का उद्योग (9) सुगंधित तेल व इत्र बनाने का उद्योग (10) शहद बनाने का उद्योग (11) रेशम उद्योग (12) बाँस, रिंगाल व बेंत पर आधारित चटाई, टोकरी व अन्य उपयोगी वस्तुएं बनाने का उद्योग।[1] इन उद्योगों को उत्तराखण्ड क्षेत्र में स्थापित कर बेरोज़गारी तथा पलायन की समस्या का निवारण करने का प्रयास हो सकता था लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ। उत्तराखण्ड की जनता ने महसूस किया कि जब तक हमें पृथक राज्य नहीं मिलेगा तब तक हमारी समस्यायें दूर नहीं होंगी।

अत: अन्तत: अपनी इन समस्याओं के समाधान हेतु यहाँ के लोग एक ही विचार रखने लगे और वो था 'पृथक राज्य मांग'।

✦✦✦

1. फोनिया, केदार सिंह, उत्तरांचल या उत्तरांचल, पृ. 88।

सनातन संस्कृति पर बौद्ध एवं जैन सम्प्रदाय का प्रभाव

श्री देवेश चन्द

असि० प्रोफेसर, इतिहास विभाग, राजकीय महाविद्यालय जखोली
जनपद रूद्रप्रयाग, उत्तराखण्ड

मानव इसलिए मानव है कि उसके पास संस्कृति है। संस्कृति ही मानव की श्रेष्ठतम धरोहर है। जिसकी सहायता से मानव पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ता जा रहा है। किसी देश की संस्कृति अपने को धर्म, दर्शन, चिंतन, कविता, संगीत, कला, शासन प्रबन्ध आदि के रूप में अभिव्यक्त करती है। संस्कृति के आधारा पर ही हम एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति से एक समूह से समूह को तथा एक समाज को दूसरे समाज से पृथक कर सकते हैं।

विश्व में अनेक संस्कृतियों का उदय हुआ और वे अस्त भी हो गयी। परन्तु हमारे भारत की प्राचीनतम सभ्यता और संस्कृति हजारों साल बीत जाने पर भी अब तक कायम है। भारत के बहुसंख्यक निवासियों का धर्म और संस्कृति हिन्दू और सनातन संस्कृति है। वेदों, उपनिषदों, अरण्यक और गीता ने ज्ञान की जो धारा प्रवाहित की थी वह आज भी अबाधित रूप से इस देश में बह रही है। बुद्ध और महावीर स्वामी जैसे महात्माओं ने अहिंसा एवं प्राणी मात्र के प्रति मैत्री भावना का जो उपदेश दिया था वह आज भी इस देश में जीवित और जाग्रत है।

भारतीय आर्यों के इतिहास को प्राचीनतम वैदिक युग कहते है क्योंकि वेद आर्यों के प्राचीनतम ग्रन्थ हैं और इनके अनुशीलन से हम आर्यों की सभ्यता संस्कृति एवं धर्म के सम्बन्ध में बहुत कुछ जानकारी प्राप्त कर सकते है। वेद भारत की संस्कृति की अकूत सम्पदा है। वेद शब्द विद् धातु से बना है जिसका अर्थ होता जानना अर्थात ज्ञान। वेदों से हमें सनातन धर्म, पारिवारिक जीवन, वेशभूषा एवं प्रशासन, मनोरंजन, शिक्षा, जाति व्यवस्था, विवाह, स्त्रियों की दशा, पशुपालन, व्यापार, लघु उद्योग, धार्मिक दर्शन, पूजा पाठ, कर्मकाण्डों आदि का ज्ञान होता है।

इस प्रस्तुत शोध पत्र में शोधार्थी ने साहित्यों का अध्ययन करके अपने उद्देश्य सनातन संस्कृति पर बौद्ध एवं जैन सम्प्रदाय का प्रभाव पर अध्ययन किया है। इस

प्रस्तुत अध्ययन में अपने को बौद्ध, जैन एवं सनातन धर्म तक सीमित रखने का प्रयास भी किया है क्योंकि धर्म का क्षेत्र अति विस्तृत है। प्रस्तुत अध्ययन के लिए द्वितीयक सामग्री किताबें, न्यूज पेपर, प्रिन्ट मीडिया, विद्वानों के विचार, पत्रिकाऐं आदि का प्रयोग किया है।

आर्यों ने भारत में एक उच्च कोटि की सभ्यता एवं संस्कृति का विकास किया था, जिसे हम वैदिक अथवा सनातन संस्कृति के नाम से जानते है, सनातन अथवा वैदिक कालीन संस्कृति के ज्ञान का मुख्य आधार वैदिक साहित्य है जिसके अन्तर्गत वेद, उपनिषद, अरण्यक, स्मृतियां, पुराण एवं अनुश्रुतियों का प्रमुख स्थान है चूंकि आर्यों का प्राचीनतम ग्रन्थ वेद ही है इसलिए सनातन संस्कृति को आर्य सभ्यता अथवा वैदिक संस्कृति के नाम से भी जाना जाता है।

सनातन धर्म अपने मूलरूप हिन्दू धर्म के वैकल्पिक नाम से जाना जाता है। सनातन परम्परा का पवित्र शब्द ओम है। वैदिक काल में भारतीय उपमहाद्वीप में धर्म के लिए सनातन धर्म नाम मिलता है। सनातन का अर्थ है- शाश्वत् अर्थात हमेशा निरन्तर बने रहने वाला, विभिन्न कारणों से कुछ भारी धर्मान्तरण के बाद भी इस क्षेत्र की बहुसंख्यक आबादी इस संस्कृति में आस्था रखती है। वैदिक या हिन्दू धर्म को इसलिए सनातन धर्म कहा जाता है कि क्योंकि यही एक ऐसा धर्म है जो ईश्वर, आत्मा और मोक्ष के तत्व और ध्यान से जानने का मार्ग बताता है, मोक्ष की प्राप्ति का रास्ता इसी धर्म की देन है। एक निष्ठता, ध्यान, मौन, तप, समाधि ये सभी नियम अभ्यास व जागरण या मौक्ष मार्ग है। मोक्ष से ही आत्म ज्ञान और ईश्वर का ज्ञान होता है। यही सनातन धर्म का सत्य है। सनातन धर्म के मूल तत्व सत्य, अहिंसा, दया, क्षमा, दान, जप, तप, नियम आदि है।

वसुधैव कुटुम्बकम की अवधारणा सनातन धर्म से ही है, जो सम्पूर्ण विश्व को एक परिवार की तरह समझता है और जब बात आध्यात्म की होती है तब भारतीय संस्कृति से अच्छा कोई विकल्प है ही नही। वास्तव में धर्म का जन्म ही सनातन संस्कृति से हुआ है। इस पावन धरा पर शिव, कृष्ण, राम, बुद्ध और महावीर कितने ही मूल्यवान व्यक्ति जन्मे तथा इसी धरा पर अपने ज्ञान का विस्तार किया, ऐसा है सनातन धर्म और सनातन संस्कृति।

"सनातन संस्कृति का प्रमुख आधार वेद हैं। वेदों से तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृति एवं राजनीतिक व्यवस्थाओं का पता चलता है जिनके आधार पर तत्कालीन संस्कृति का प्रारम्भिक विवरण ऋग्वैदिक काल में दृष्टिगोचर होता है। इस काल के आरम्भ में चतुर्वण्य समाज की कल्पना की गई जिनमें ब्राह्मण,

राजन्य (क्षत्रिय), वैश्य एवं शूद्र हैं। चारों वर्ग की उत्पत्ति आदि पुरुष के भिन्न-भिन्न अंगों से बताई गई है।"[1]

"साामजिक व्यवस्था के अन्तर्गत समाज की न्यूनतम इकाई परिवार थी। सामूहिक परिवार की प्रथा थी। इसमें वयोवृद्ध (बहुधा पिता) परिवार का स्वामी होता था। विवाह को पवित्र संस्कार समझा जाता था। यज्ञ में पति-पत्नी का होना आवश्यक माना जाता था। विवाह प्राय: व्यस्क होने पर ही होते थे। सजातीय विवाह ही होते थे। कुछ प्रतिलोम विवाह के उदाहरण भी मिलते हैं। महर्षि शुद्राचार्य की पुत्री देवयानी का विवाह राजा ययाती के साथ हुआ था। साधारणतया एक पत्नि व्रत की प्रथा प्रचलित थी। ऋग्वेदिक समाज में यज्ञ एवं तप का विशेष महत्व था। इस कार्य हेतु पुत्र आवश्यक था। पति की मृत्यु होने के पश्चात पुनर्विवाह की अनुमति थी। समाज में बाल विवाह की प्रथा प्रचलित नहीं थी। ऋग्वेद में स्पष्ट उल्लेख है कि दहेज प्रथा नहीं थी। एवं कन्या को उसके विवाह पर उपहार दिये जाते थे।'[2]

"पहनावे में वस्त्र तीन प्रकार के थे। वास शरीर के नीचे के हिस्से में पहना जाता था। अधिवास शरीर के ऊपरी भाग में एवं अन्य वस्त्र नीवि उपयोग में लाया जाता था। नीवि को वास के नीचे पहनते थे। स्त्री व पुरूष दोनों आभूषण प्रिय होते थे। उस समय जड़ी बूटियों का औषधियों के रूप में प्रमुखतया प्रयोग किया जाता था।"[3]

"भोजन में दूध तथा दूध से बने पदार्थों का प्रमुख स्थान था। चावल तथा जौं की रोटियों को घी में मिलाकर खाया जाता था। 'यव' नामक अनाज से हलवा बनाया जाता था। गाय को पवित्र माना जाता था। मांसाहार सोमरस और सुरा का प्रयोग किया जाता था। मनोरंजन के साधनों के लिए रथदौड़, घुड़ दौड़, चौपट खेलना, नृत्य, गायन, संगीत के लिए ढोल, दुन्दुभि, सारंगी, बांसुरी आदि का प्रयोग किया जाता था।"[4]

"पूर्ववर्ती काल में आर्यों की कोई तिथि नहीं थी तथा लिखने की बात का संकेत भी नहीं मिलता है इस काल की शिक्षा का आधार लिखित नहीं बल्कि

---

1. प्राचीन भारत का इतिहास, द्विजेन्द्र नारायण झा, कृष्ण मोहन श्रीमाली, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1981 पु० 123, 145, 146
2. प्राचीन भारत का राजनैतिक तथा सांस्कृति इतिहास, भाग-1, विमल चन्द्र पाण्डेय, सेन्ट्रल पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद, 1985, पृ० 92, 93
3. भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, डा० ए०के० मित्तल, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, 2002, पृ० 56
4. प्राचीन भारत का इतिहास, बी०डी० महाजन, एस० चन्द एण्ड कम्पनी लिमिटेड, नई दिल्ल 1989, पृ० 97, 98

मौखिक पद्धति थी गुरू के समीप बैठकर मौखिक ज्ञान अर्जित किया जाता था। शिक्षा की व्यवस्था बौद्धिक एवं नैतिक स्तर को ऊंचा उठाने के लिए की जाती थी, उच्चारण पर अत्यधिक ध्यान दिया जाता था तथा आचरण की पवित्रता को बताया गया है। पिता तथा पुत्रों को शिक्षा देने की प्रथा की प्रचलित थी।"[1]

पूर्ववर्ती काल में समाज चार वर्गों में विभाजित हो चुका था वर्ण व्यवस्था जटिल नहीं थी। वर्ग निर्धारण कर्म और व्यवसाय के आधार पर होता था परन्तु परिवर्ती काल में यह व्यवस्था जटिल हो चुकी थी वर्ण का निर्धारण जन्म के आधार पर होने लगा था। वर्ण व्यवस्था जटिल तथा रूढ़िवादी हो चुकी थी। "समाज में चतुर्आश्रम (ब्रह्मचर्य, ग्रहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यास का उदय हो चुका था) विवाह पद्धति में परिवर्तन हो चुका था। आठ प्रकार के विवाह प्रचलित थे तथा 16 संस्कार का प्रचलन था। समाज में महिलाओं की स्थिति में कफी अन्तर आ चुका था। स्त्रियों का समाज में सम्मानपूर्ण स्थान नहीं थ। वह गृहकार्य तक ही सीमित रह गयी थी।"[2]

"प्राचीन सनातन संस्कृति अथवा वैदिक धर्म का जीवित शक्ति के रूप में धीरे-धीरे ह्रास होने लगा था। उपनिषदों ने मानव जीवन के मूल-भूत प्रश्नों पर मानव की चिन्तन एवं स्वतंत्रता की आवाज के लिए प्रेरित किया। जीवन में असन्तोष दु:ख एवं चिन्ताओं के साथ में विचार तथा इनसे निकलने का मार्ग की खोजने की अभिलाषा भी लोगों के मन में उठने लगी। इसके परिणाम स्वरूप नये विचारों तथा नये दार्शनिकी के सिद्धान्तों का एक नया युग प्रारम्भ हो गया। यहां पर दो नये धार्मिक सम्प्रदायों ने जन्म लिया जो जैन धर्म तथा बौद्ध धर्म के नाम से सामने आये। इनका भारत के धार्मिक व सामाजिक इतिहास पर गहरा प्रभाव पड़ा। ये दोनों धर्म जैन धर्म एवं बौद्ध धर्म क्रान्तिकारी थे, बौद्ध एवं जैन धर्म अथवा सनातन धर्म का सुधार वादी आन्दोलन कहे जा सकते है।"[3]

सनातन संस्कृति अथवा वैदिकोत्तर काल में हिन्दू समाज चार वर्गों में विभाजित हो चुका था, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र। वर्ण व्यवस्था जनपद आधारित हो चुकी थी। समाज में ब्राह्मणों को सर्वोच्च माना जाता था। ब्राह्मणों के मुख्य कार्य दान लेना, करों से मुक्ति, ब्राह्मणों, क्षत्रियों का युद्ध व शासन करना, उनका समाज में दूसरा स्थान था। वैश्य खेती व पशुपालन करते थे। यह मुख्य करदाता भी थे। शूद्र को वेद व पठन

---

1. प्राचीन भारत, डा० दीनानाथ वर्मा, ज्ञानदा प्रकाशन नई दिल्ली, 2002, पृ० 64, 118
2. भारत का इतिहास (आदिकाल से 1950) डा० एच०पी० राय, ज्ञानदा प्रकाशन नई दिल्ली, 2004, पृ० 91
3. प्राचीन भारत, डॉ० रमेश चन्द्र मजूमदार, मोतीलाल बनारसी दास जवाहर नगर, दिल्ली 1973, पृ० 155

पाठन का अधिकार नहीं था। अन्य तीनों वर्गों की सेवा करना था। वह अस्पृश्य माने जाते थे। धीरे-धीरे कर्मकाण्डों में आत्यात्मिक जटिलता आ गयी थी।

"वर्द्धमान महावीर जैन धर्म के चौबीसवें तीर्थंकर हुए। 42 वर्ष की अवस्था में ही उनको कैवल्य ज्ञान प्राप्त हो गया था। उन्होंने वस्त्र का त्याग किया। तथा समस्त इन्द्रियों पर विजय प्राप्त की। जैन धर्म के प्रमुख सिद्धान्तों में पांच व्रत-अहिंसा, अमृषा, अचौर्य, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य प्रमुख है। जैन धर्म में मोक्ष प्राप्ति करने के लिए कर्मकाण्डीय अनुष्ठान की बाध्यता नहीं पड़ती। मोक्ष सम्यक् ज्ञान, सम्यक ध्यान, सम्यक आचरण से प्राप्त किया जा सकता है। वहीं दूसरी ओर गौतम बुद्ध ने जो कि महावीर स्वामी के समकालीन थे, ने यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति के पश्चात अपने अनुयायियों की दु:ख तथा दु:ख से निवृत्ति के लिए अष्टांगिक मार्ग बताया तथा अष्टांगिक मार्ग पर चलकर मोक्ष प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त किया। मोक्ष प्राप्ति का उन्होंने मध्यम मार्ग सबसे उपर्युक्त मार्ग बताया। बौद्ध धर्म का लक्ष्य मानव को मुक्ति या निर्वाण का मार्ग दिखाना था।"[1]

वर्धमान महावीर तथा गौतमबुद्ध द्वारा दिये गये उददेश्यों एवं शिक्षाओं ने प्राचीन भारतीय सनातन संस्कृति अथवा वैदिक धर्म की अनुयायी जनता के जीवन पर बड़ा प्रभाव हुआ। लोग अपनी प्राचीन सनातन संस्कृति को छोड़कर बौद्ध धर्म एवं जैन धर्म की दीक्षा लेने लगे। सनातन संस्कृति में धर्म का नेतृत्व ब्राह्मण वर्ग कर रहा था जो कर्मकाण्डों, विधि विधान और अनुष्ठानों द्वारा जनता को धर्म का मार्ग प्रशस्त कर रहे थे। "सनातन संस्कृति के द्वारा बनाया गया मार्ग पर चलकर जनता इहलोक तथा परलोक में सुख प्राप्त करने का प्रयत्न कर रही थी। परन्तु लोग अब बाह्य आडम्बरों, अन्ध विश्वास, रूढ़िवादिता में विश्वास करने के लिए तैयार नहीं थे।"[2] सनातन संस्कृति में समाज के निम्न वर्ग शूद्रों को न यज्ञोपवीत संस्कार का प्रावधान था तथा न ही वेदाध्यन कर सकते थे। जैन धर्म व बौद्ध धर्म ने सबसे पहले वर्ण व्यवस्था और वैदिक कर्मकाण्डों पर कुठाराघात किया तथा समाज के सभी वर्गों की विशेषकर शूद्रों और स्त्रियों के लिए अपना दरवाजा खोल दिया। समाज का हिस्सा सनातन संस्कृति को छोटा जैन धर्म व बौद्ध धर्म का अनुयायी बन गया। इसके साथ ही कला के क्षेत्र में विशेष प्रभाव पड़ा जहां महावीर स्वामी तथा महात्मा बुद्ध की मूर्तियां स्थापत्य कला में एक विशेष महत्व रखती है। इन धर्मों ने कर्मकाण्ड की अपेक्षा शुद्ध नैतिक

---

1. प्रारंभिक भारत का परिचय, रामशरण शर्मा, ओरियंट ब्लैक स्वॉन प्रा०लि०, आसान कली रोड, दिल्ली, 2002, पृ० 139,143,138,143
2. भारतीय संस्कृति का विकास, सत्यकेतु विधासागर, श्री सरस्वती सदन, सफदरजंग इन्कलेव, नई दिल्ली। 2009, प्र० 131।

आचरण पर अत्यधिक बल दिया। मूर्ति पूजा का विरोध किया तथा यह समझाने का प्रयास कि कि गृहस्थ आश्रम में रहकर ही मोक्ष अथवा निर्वाण को प्राप्त किया जा सकता है।

सनातन संस्कृति अथवा वैदिक यज्ञवाद तथा कर्मप्रधान प्रवृत्ति मार्ग का शमन संस्कृति के निवृत्ति मार्ग (सन्यास) मार्ग से मतभेद होना अवश्यभावी था। सनातक संस्कृति में ऋषि मुनियों की परम्परा थी किन्तु सनातन धर्म में कर्मवादी तथा गृहस्थ धर्म ही बना। यहां तक कि पूरण कश्यप नामक ब्राह्मण जाति का आचार्य घोर अक्रियावादी था। उनके अनुसार चोरी, डकैती, हत्या, झूठ आदि पाप नहीं थे। अर्थात कर्मों का कोई फल नहीं होता है। ऐसा विश्वास था कि सभी अतिवादी तथा सामाजिक नैतिकताविहीन चिन्तन प्रकृति के नियम पर अटूट विश्वास की धारणा कर रही थी। इस व्यवस्था को केवल इसे न ईश्वर परिवर्तित कर सकता था, न कर्मकांड, यज्ञों या पुरोहित जैन धर्म ने वेद की प्रमाणिकता को नहीं माना तथा इन धर्मों में कर्मकाण्डों का कोई स्थान नहीं था। जाति व्यवस्था की आलोचना की गयी। घोर अहिंसावादी होने के कारण पशुवध के विरोधी थी। निर्वाण या मोक्ष प्राप्ति का मार्ग सभी के लिए खुला था। कर्म से ही व्यक्ति ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शुद्र होता है। सनातन संस्कृति की जाति उनका घोर विरोध किया।" जैन धर्म व बौद्ध धर्म वास्तव में कोई नये धर्म नहीं थे बल्कि हम सनातन धर्म को ही एवं शाखा मान सकते है। प्राचीन सनातन धर्म को सुधारने का प्रयास इन शाखाओं द्वारा किया गया। सनातन धर्म में फैली बाह्य आडम्बर, हिंसा, जटिल कर्मकाण्ड, बलि प्रथा का विरोध किया। इन धर्मों ने हमें एक सर्वप्रिय धर्म प्रदान किया जिसमें निरर्थक नियमों, विधि विधानों तथा पुरोहितों की आवश्यकता नहीं थी। इस दृष्टिकोण से सनातन संस्कृति पर इनका विशेष प्रभाव पड़ा क्योंकि यह कर्मकाण्ड विधि विधान, जनसाधारण की कल्पना से परे थे। शुद्रों के साथ घोर अन्याय हो रहा था। इन्होंने पवित्रता, सत्य अहिंसा, आदि पर विशेष बल दिया जिसके कारण यज्ञ की प्रधानता कम होने लगी।

✦✦✦

हिन्दी साहित्य में नारी : उपन्यास के सन्दर्भ

-डॉ० रेखा सिंह

हिन्दी विभाग, रा०महा०विद्यालय,
डाकपत्थर, विकासनगर, देहरादून

मानव समाज में नारी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। नारी के बिना मानवीय सृष्टि की कल्पना नहीं की जा सकती है। नारी से मानव प्रेरणा, शक्ति, सृष्टि, त्याग, प्रेम, ममता इत्यादि प्राप्त करता है। इतना सब कुछ होने के बावजूद नारी के साथ प्राचीन काल से ही भेद भाव होता आ रहा है। यद्यपि समय-समय पर उसके उत्थान के लिए विभिन्न आंदोलन होते रहे हैं, परन्तु अभी तक उसे वह स्थान प्राप्त नहीं हो पाया जिसकी वह अधिकारिणी है। नारी के उत्थान के लिये समय-समय पर आंदोलन हुये हैं। जिनमें विश्व प्रसिद्ध कुछ प्रमुख आंदोलनों को शामिल किया जाता है। 1789 की फ्रांसीसी क्रान्ति, जिसमें बन्धुत्व समानता स्वतन्त्रता जैसे तत्त्व शामिल हैं। 1829 ई में राजाराम मोहनराय का सती प्रथा आन्दोलन तथा 1848 की न्यूयार्क के ग्रिम के बहनों की स्त्री मुक्ति का आन्दोलन हुआ है। भारतीय समाज की यदि बात करें तो स्त्री की स्थिति दो तरह से प्रभावित करती है। एक परम्परागत, भारतीय नारी जैसे सीता, सती, सावित्री तथा दूसरी खलनायिका के रूप में, जो अक्सर सिनेमा या दूसरे प्रकार के कथानकों में मिलती है ईर्ष्यालु, आक्रोशी, रागद्वेषी आदि स्त्रियों की विभिन्न तरह की चर्चा साहित्य की दृष्टि से भारतेन्दु युग से लेकर आज तक अधिकांश उपन्यासों में हुई हैं। इनमें नारी के शोषण, उन पर होने वाले अन्याय, अत्याचार व उनकी मुक्ति के उपाय सुझाये गये हैं। चूँकि साहित्य समाज का दर्पण होता है, इसी तथ्य मद्देनजर समाज की स्थिति का वर्णन साहित्यकार रचनाओं में करते हैं। यही दृष्टिकोण लेकर साहित्य का विकास हुआ है। साहित्य में नारी की भूमिका को लेकर साहित्य को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है -

भारतेन्दु युग- इस युग के उपन्यासकारों का पहला ध्यान नारी की सामाजिक दशा की ओर गया। चूँकि उपन्यासकार नारी की दयनीय स्थिति से परिचित थे। उन्होंने पाश्चात्य नारी के दुर्गुणों को विस्मृत करके अच्छे गुणों की सराहना की और आगे बढ़ने के लिये प्रेरित किया। इस युग के प्रमुख रचनाकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र थे। इनके

बाद वाले रचनाकारों में इनका जैसा नवीन दृष्टिकोण नहीं था। वह नारी को पाश्चात्य सभ्यता एवं शिक्षा के प्रसार से दूर रखना चाहते थे। यद्यपि तत्कालीन उपन्यासकारों ने नारी के विधवा विवाह, बाल विवाह, अनमेल विवाह जैसे सामाजिक मुद्दे तो उठाये परन्तु समाधान प्राचीन मान्यताओं के अनुसार ही किया। नारी की शिक्षा के विषय में भाग्यवती उपन्यास के कुछ अंश- "मेरी समझ में वे लोग बड़े मूर्ख हैं जो अपने लड़के-लड़की को विद्या से हीन रखते हैं।"[1] इस युग के सहित्यकारों ने परिवार में पुत्र को कन्या से अधिक महत्त्व दिये जाने वाले रूढ़िगत विश्वासों को नही मानते थे।

द्विवेदी युग- सामाजिक जीवन की कुरीतियों को सामने लाकर उनका विरोध करना इस युग के उपन्यासकारों का प्रमुख लक्ष्य रहा है। जैसे पं० लज्जाराम मेहता के उपन्यासों में स्त्री को पर्याप्त महत्व मिला है। इसी युग में अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध जी का उपन्यास 'अधखिला फूल' में नारी के सम्पूर्ण जीवन को चित्रित किया गया है। नारी हर एक को खुश करने पर लगी रहती है सभी की खुशी में अपनी खुशी ढूँढती है। यथा- "जिससे आपका जी सुखी हो, मैं उसी की खोज में रहती हूँ, और उसके मिलने पर सब कुछ पा जाती हूँ।'[2] यह कथन बासमती, कामिनी मोहन को कहती है। नारी की सामाजिक स्थिति का वर्णन पं० लज्जाराम मेहता के धूर्तरसिकलाल, स्वतन्त्र रमा और परतंत्र लक्ष्मी, आदर्श दम्पति, बिगड़े का सुधार, सती सुख देवी तथा आदर्श हिन्दू आदि कई उपन्यासों में मिलता है। इन उपन्यासों में नई शिक्षा, नवीन आदर्श, पाश्चात्य प्रभावों की निंदा की गई है तथा सती प्रथा, पर्दा-प्रथा, अशिक्षा आदि का समर्थन किया गया है। 'सुशीला विधवा' में मध्यम वर्ग की रूढ़िवादिता और परम्पराओं का समर्थन मिलता है- 'सुशीला विधवा' उपन्यास नारी समस्यायुक्त सामाजिक उपन्यास है। उपन्यास की पात्र विधवा अपने पुनर्विवाह का विरोध करती हुई अपना वैधव्य नहीं छोड़ती नहीं है और ब्रह्माचर्य का पालन करके सद्गति प्राप्त करती है। 'बिगड़े का सुधार' उपन्यास में एक दुराचारी को पत्नी के माध्यम से सदाचारी बनाने का चित्रण किया गया है।[3] इस तरह से कहा जा सकता है कि द्विवेदी युग में नारी का वर्णन एक रूढ़िवादी परम्परा के तहत किया गया है।

---

1. डॉ० राजेश कुमारी कौशिक - प्रेमचंद पूर्व हिन्दी कथा सा० में उभरता समाज (सा० संस्कृति की त्रैमासिक ई पत्रिका जूलाई-सितम्बर 2014)
2. हरिऔध - अधखिला फूल (गोड्याकोष अध्याय-4)
3. डॉ० अर्चना द्विवेदी - सामाजिक जागरण के पुरोधा उपन्यासकार लज्जाराम मेहता -rsaudr.org

प्रेमचन्द युग - इस युग को नारी की समस्याओं का संघर्ष काल कह सकते हैं। चूँकि इस काल खण्ड के प्रमुख उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द है। इन्होंने तत्कालीन परिस्थितियों को बारीकी से और सम्पूर्णता के साथ चित्रित किया। उन्होंने नारी के यथार्थ जीवन की ज्वलंत समस्याओं को अपनी लेखनी के माध्यम से व्यक्त किया उन्होंने नारी की परिस्थिति को अपने उपन्यासों को शिद्दत से उकेरा। गोदान की मालती सुशिक्षित, स्वतंत्र चेतना, आत्मनिर्भर, व्यवसायिक युवती की तरह घर के सारे दायित्वों को पुरुषों की तरह सम्भालती है। प्रेमचन्द ने न केवल नारी समस्याओं का चित्रण किया, बल्कि परवर्ती साहित्यकारों के लिये मार्गदर्शक का कार्य भी किया। यह जैनेन्द्र के उपन्यासों में भी देखने को मिला - 'उनके उपन्यासों में अनमेल विवाह या दहेज प्रथा जैसी समस्याएं नहीं हैं, बल्कि विवाह स्वयं में एक समस्या है, क्योंकि सारी अनिश्चिताएं उसके बाद आरम्भ होती हैं। किन्तु जिस मुक्ति की समस्या पर उन्होंने बल दिया, उसके आड़े आते हैं रुढ़ि संस्कार, और इस प्रकार जैनेन्द्र का प्रत्येक उपन्यास अर्न्तविरोधों का उपन्यास बन गया है।'[1]

भगवती चरण वर्मा- जी ने भी अपने उपन्यासों के माध्यम से नारी का चित्रण किया। 'भूले-बिसरे चित्र' में भी इसी तरह का वर्णन है। इसकी नायिका गंगा पढ़ी-लिखी प्रगतिशील नारी है जो पति और ससुराल वालों के दुर्व्यवहार से रुष्ट होकर विवाह विच्छेद करना चाहती है तथा नौकरी करके आत्मनिर्भर जीवन व्यतीत करती है। जयशंकर प्रसाद जी के उपन्यास 'कंकाल' और 'तितली' में समाज के उत्थान-पतन का चित्रण है। इसी तरह भारतीय नारी के विविध रूपों को अपने उपन्यास साहित्य द्वारा ऊषा देवी मित्र ने नारी गुणों का परिचय दिया है। उन्होंने समाज द्वारा विविध स्तरों पर असमानता का शिकार नारी के जीवन में व्याप्त पीड़ा और द्वेष को व्यक्त किया है। प्रेमचन्द युगीन उपन्यास साहित्य में नारी को आदर्शवाद के साथ-साथ भावुकता व भारतीय आदर्शवादिता की प्रतिमूर्ति दिखाया गया है।

प्रेमचन्दोत्तर युग- इस युग के प्रमुख उपन्यासकारों में अज्ञेय, फणीश्वरनाथ रेणु, रांगेय राघव, सुरेन्द्र वर्मा, जैनेन्द्र, मनोहर श्याम जोशी हैं महिला लेखिकाओं में कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी, पदमा सचदेवा, मृदुला गर्ग, मैत्रेयी पुष्पा, नासिरा शर्मा, प्रभा खेतान आदि हैं। प्रेमचदोत्तर युग के जैनेन्द्र के उपन्यासों में मनोविश्लेषणता का व्यापक प्रभाव था।

फणीश्वर नाथ रेणु और रांगेय राघव प्रसिद्ध आंचलिक उपन्यासकार हैं। फणीश्वर के मैला आंचल की कमली, लक्ष्मी आदि स्त्रियाँ अपनी इच्छा को महत्व

---

1. डॉ० नगेन्द्र - हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ०सं० - 672

देती हैं वही 'कब तक पुकारू' की प्यारी और कजरी भी सशक्त नारियों में हैं। भीष्म साहनी की 'बंसती' में महरी का काम करने वाली स्त्रियों को "अलग कोण से उठाने वाले लेखकों में सुरेन्द्र वर्मा (मुझे चाँद चाहिए) और उदय प्रकाश (पालगोमरा का स्कूटर) का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है, मनोहरश्याम जोशी की तरह इनके यहाँ भी स्त्री मूलतः देह है।"[1] सुरेन्द्र वर्मा ने (मुझे चाँद चाहिए) एक कस्बे की लड़की को मेहनत करते हुए दिखाया है जो बाद में अभिनेत्री बनती है। 'हमजाद' की स्त्रियों को सिर्फ बाजारवाद से प्रभावित वस्तु बनकर दिखाया गया है। स्त्री समस्याओं को गहनता से समझने के लिए स्त्री लेखिकाओं ने भी समय के साथ अपनी लेखनी को माध्यम बनाया। इनमें मृणाल पांडे, मृदुला गर्ग आदि लेखिकाओं को शामिल किया जा सकता है।

स्त्री विमर्श महिला लेखन के पक्ष में – लेखन के क्षेत्र में स्त्रियों का आगमन बहुत बाद में हुआ क्योंकि वे साक्षर कम थी, लेकिन लोकगीतों एवं तमाम तरह के लोक साहित्य के माध्यम से स्त्रियों की स्थिति का प्रयास प्रगति पर था। नारी विमर्श पर लेखनी चलाने का सौभाग्य कृष्णा सोबती को मिला 'कृष्णा सोबती की नारी स्थूल दृष्टि से देखने पर कामनाओं द्वारा संचालित विशुद्ध देह के स्तर पर जीवन जीती नारी है लेकिन जरा सी गहराई में उतरते ही वह स्त्री अस्मिता की ऊँचाइयों को छूने के प्रयास में जिन मानवीय मूल्यों के प्रति आस्था व्यक्त करती है, वह न केवल अन्यत्र दुर्लभ है, वरन् आज की महती जरूरत भी है।'[2]

युवा लेखक क्षितिज राय का पहला उपन्यास 'गंदी बात' मे भी नारी संघर्ष को दर्शाया गया है। प्रदीप सौरभ जी का उपन्यास 'मुन्नी मोबाइल' में स्त्री को आजाद दिखाया गया है, जो पूंजीवादी परिवेश और बाजारवाद की चकाचौंध का ही असर है। उन्होंने स्त्री को जागरूक, सचेत और सक्रिय बताया है।

सारांशतः कहा जा सकता है कि पिछले कुछ समय से नारी अपने अस्तित्व, अस्मिता और महत्त्व को लेकर बहुत जागरूक हुई है। इसका एक कारण शिक्षा भी है। सामाजिक चेतना ने नारी को जागरूक करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है। प्राचीन काल में वह आज की अपेक्षा अधिक शोषित, प्रताड़ित और लाचार थी। इसलिए तत्कालीन साहित्य में उसकी इस स्थिति का मार्मिकता के साथ प्रतिबिम्बन किया गया है।

✦✦✦

1. मीरा गौतम (संपादक) – अन्तिम दो दशकों का हिन्दी सा० पृ०सं० 103
2. वही – पृ०सं० – 106

हिंदी साहित्य में नारी

-डॉ सुनील कुमार

गेस्ट फैकल्टी, (हिंदी विभाग) राजकीय महाविद्यालय
रुद्रप्रयाग, उत्तराखण्ड 9719356047

सारांश-

साठवां दशक हिंदी कविता में एक नवीनता का स्वर लेकर उभरा, यह नये बिंब, प्रतीकों तक ही सीमित नहीं रहा बल्कि उसमें किसान चेतना, दलित चेतना, स्त्री चेतना, आदिवासी विमर्श आदि को प्रमुख रूप से साहित्य में स्थान दिया गया। जो आधुनिक समय में एक विकसित नहीं अपितु पूर्ण विकासशील रूप में साहित्य में अग्रसर है। इन साहित्यिक विमर्शों में हिंदी साहित्य को एक पूर्णता प्रदान करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। साथ ही सामाजिक सरोकारों को भी उजागर करने के साथ उन समस्याओं को उभारा जो समाज के विकास में अवरोधक बनकर खड़े हैं। साथ ही उन अवरोधकों का दूर करने को प्रयास भी साहित्य के माध्यम से प्रस्तुत करने के सार्थक प्रयास किये गए हैं। जो आज भी अविरल गति से जारी हैं। स्त्री समाज का ही नहीं साहित्य का भी केन्द्र बिन्दु हैं। लेकिन साहित्य में इसे भोग विलास के रूप में अधिकांशत: चित्रित किया गया है। वर्तमान हिंदी साहित्य में इस धारणा को समाप्त करते हुए स्वयं महिला साहित्यकारों ने लेखनी को चलाने का कार्य अपने हाथों में लिया और सामाजिक एवं व्यक्तिगत यथार्थ को शब्दों के द्वारा चित्रित करने का जो साहस दिखाया, वह सराहनीय है। साथ ही ऐसे सरोकारों एवं संवेदनाओं को उजागर किया जो, वही सार्थक रूप से प्रस्तुत कर सकता है, जो उन संवेदनाओं एवं सरोकारों से गुजरा होगा। नव समकालीन रचनाकारों ने अपनी कविताओं को उन संवेदनाओं को उकेरा है, जिनसे वे स्वयं गुजरती हैं।

हर स्त्री के लेखन का केन्द्र स्त्री का स्वयं का अपना अनुभव होता है। एक स्त्री रचनाकार जिन संवेदनाओं से व्यवहारिक रूप से गुजरती है, उसे अपने शब्दों में ढालकर साहित्य के द्वारा प्रस्तुत करती है। महिला रचनाकारों की अभिव्यक्ति में शोषण एवं दमन के प्रति विरोध की भावना का विकास होना एक सभ्य समाज के लिए शुभ संकेत है। सपना चमड़िया ने सामाजिक एवं आर्थिक रूप से विवश स्त्री की व्यथा का मार्मिक वर्णन कुछ इस प्रकार प्रस्तुत किया है- 'आप जब भी/मिस

कॉल देंगे/हम सब काम छोड़ के/जी साहबे तगाड़ी पटक देंगे/दूध पिलाते बच्चे को/झटक देंगे/रात के अंधेरे में/ठेकेदार को हटाकर/जी साहेब उसी हालत में/जी साहेब जैसे भी हो/जी सही उच्चारण से/नहीं साहब कपड़े/बाद में पहनेंगे/जी सीधे खड़े होकर/थरथराते हुए, रोते हुए, भूखे पेट/निर्वस्त्र हम/आपका गीत पहले गाएँगे।'[1] सपना चमड़िया ने आज के सामाजिक परिवेश को ही प्रस्तुत करने का साहस किया है। उन्होंने बताया कि कैसे आज भी सांमती सोच वाले, दबंग, राजनीतिक एवं आर्थिक रुप से सशक्त दरिंदे बेबस एवं लाचार महिलाओं का तन एवं मन को अपनी हवस के द्वार कुचलते हैं।

आज के इस तकनीकी एवं विज्ञान के युग में भी पुरुष की पुरुषत्वादी सोच में परिवर्तन नहीं हो पाया है। पुरुषों के लिए स्त्री आज भी भोग विलास की वस्तु के दायरे से बाहर नहीं निकल पायी है। हर दिन बलात्कार, सामूहिक बलात्कार एवं अपने ही करीबी के द्वारा महिला के शारीरिक शोषण की खबरें दिन-प्रति दिन बढ़ती ही जा रही हैं। स्त्री के लिए सबसे अधिक सुरक्षित जगह घर को माना जाता है, लेकिन आधुनिक समय में सबसे अधिक शोषण के मामले उसी घर से दर्ज हो रहे हैं। कुछ घर तो महिलाओं के लिए घर कम कैदखाने ज्यादा बने हुए हैं। देवयानी भारद्वाज अपनी कविता 'चश्मा बदलना चाहता हूं' के माध्यम से अपनी संवेदनाओं के कुछ इस तरह से अभिव्यक्त करती हैं- 'कितने ही लैंस आजमाने के बाद/मिला मुझे यह चश्मा/लेकिन नहीं करता यह मेरी सहायता/चीजों को साफ देखने में/चीजों को साफ देखने में/वे इतनी विरूपित हैं/कि छिन गया है/मन चाहा देखने का भी सुख/मैं अपना चश्मा बदलना चाहती हूं।'[2] इंसान अपने भोग विलास में ऐसी हदें पार कर दी कि उसी स्त्री ने सदियों से ही अथाह शोषण को सहा है, जो आज भी जारी निरंतर जारी है। जिसमें कई नव विवाहिताओं के जीवन को पुरुषवादी सोच ने अपने अहंकार के कारण जमींदोज कर दिया है। पंखुरी सिन्हा की कविता 'सीता के बाद' में स्त्री के मर्म को बेहतरीन ढंग से उकेरा गया है। 'भूकम्प हमें नहीं मारता/मारती हैं, गिरती हुई इमारतें/सीता के बाद, ऐसा तो सुना नहीं/कि धरती फटी हो/और लोग उसमें समा गए हों/खड़े, खड़े/लाशें तो मिली हैं/मलबे के ही नीचे/जो भी हुआ है/मलबे के कारण/मलबे की ही वजह से/गई हैं जानें/धरती ने नहीं लीला है/किसी को।'[3] दुखद तो यह है कि जो समाज अपने को उच्च शिक्षित कहता वह भी इस प्रकार की संकीर्ण विचारधारा का शिकार है।

---

1. चमड़िया सपना, हंस पत्रिका, मार्च, 2016, पृ. 34
2. भारद्वाज देवयानी, चश्मा बदलना चाहती हूँ, आजकल पत्रिका, मार्च, 2016, पृ. 40
3. सिन्हा पंखुरी, सीता के बाद, परिकथा पत्रिका, मार्च-अप्रैल, 2016, पृ. 77

परिवर्तन सृष्टि का नियम है। धीरे-धीरे ही सही लेकिन वह होता रहता है। समय के साथ स्त्री समाज ने भी अपने भी अपने अंदर साहस को जगाने का कार्य किया और इसका परिणाम यह हुआ कि स्त्री ने शोषण के विरुद्ध प्रतिरोध करना शुरू कर दिया है। चाहे यह प्रतिरोध कम मात्रा में ही देखने को मिला रहा है। लेकिन संतुष्टि इससे होती है कि इसकी शुरुआत हो चुकी है। जो स्त्री को चेतना एवं निर्भीकता की ओर अग्रसर कर रहा है। रुचि भल्ला 'सुनो प्रज्ञा' कविता में शब्दो के माध्यम से इस प्रतिरोध को कुछ इस तरह से अभिव्यक्त करती हैं- यह वक्त कविता लिखने का नहीं/पाश हो जाने का है/कलम के तलवार होने का है/पाश की आत्मा से रिश्ते लहू की स्याही में/तुम/अपनी तलवार भिगो/दुनिया के हर पुर्जे पर तुम पाश लिख दो/लिख दो इस तरह से कि धरती पर विखर जाए/रंग लाल पाश का/आसमान में विखर जाए/कविताओं के लाल-गुलाब का/लिखो कि इससे पहले तुम्हारी तलवार/कहीं धार न खो दे/इससे पहले तुम विशुद्ध कवि न रह जाओ/तुम्हें लिखना होगा प से पाश'[1] शिक्षा ने स्त्री के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। समाज में स्त्री के प्रति दृष्टिकोण बदला नहीं हैं। आज भी उसे अनेक प्रकार से प्रताड़ित किया जाता है। उसे यह एहसास बार-बार दिलाया जाता कि वह पुरुषों की तुलना में कमजोर है। अधिकांश स्त्रियों का जीवन आज भी संघर्ष यातनाओं की गाथा है। उनकी यातनाओं की गाथाओं को सुनने मात्र से रोंगटे खड़े हो जाते हैं। स्त्री को जीवन के हर दौर में बस दूसरों के लिए यातनाओं को सहन करना पड़ता है। कुसुम भट्ट अपनी कविता 'बची रही कहीं' में अपनी भावनाओं को इस तरह से वास्तविकता के धरातल पर रखती हैं- 'जो सोचा था/नहीं हुआ/मिलना था जो/नहीं मिला/छकाती रही जिंदगी/फिर भी/ललचाती रही जिंदगी/खुरचती रही नाखूनों से चमड़ी/उधेड़ती रही सीवन/जख्म गहरे पकते रहे/मिला नहीं मलहम/जो मिला/नमक छिड़कने जैसा'[2] लेकिन फिर भी स्त्री अपने करुणामय सौन्दर्य को पूर्ण रूप से नहीं छोड़ती है। वह उस करुणा को समेटे रखती है, जो इंसान होने के लिए आधारशिला है। मुकेश अपनी कविता 'तुम हो तो' में अपने अंदर संतुष्टि का बीज बोने का प्रयत्न करते हैं। जो एक सकारात्मक संदेश देती है-सुनो/मेरे भीतर के भाष्कर/मेरे भीतर के जलधर/मेरे भीतर के सरिता/तुम भी/उगते रहना/बरसते रहना/चमकते रहना/बहती रहना/ताकि चलता रही जीवन/बेशक थम-थमकर ही।'[3]

आज भी इस विकासशील देश में कैसे बालिका भ्रूण हत्या के जीवंत उदाहरण

---

1. भल्ला रुचि, सुनो प्रज्ञा, आजकल पत्रिका, मार्च, 2017, पृ. 43
2. भट्ट कुसुम, बची रही कहीं, आजकल पत्रिका, जून, 2015, पृ. 02
3. मुकेश कविता, तुम हो तो, आजकल पत्रिका, नवंबर, 2016, पृ. 44

देखने को मिलते हैं। कैसे आज भी बेटियों को जन्म लेने से पहले ही बोझ समझकर उनकी जीवन लीला को समाप्त कर दिया जाता है। जो बेटियां समाज में आगे बढ़ने का प्रयास करती हैं कैसे उनकी राह में अनेक प्रकार की बाधाएँ खड़ी की जाती हैं। ज्योति जैन ने अपनी कविता 'नारी हूं मैं' में इस मर्म को पूर्ण यथार्थ के साथ चित्रित करने का साहस किया है- 'परिस्थितियों के प्रतिकूल बहना तो/मैं तभी सीख गई थी/जब थी मां के गर्भ में।/अस्तित्व के लिए किया जा रहा संघर्ष/जारी है आज भी।/पौरुष लगा है रौंदने में..../तन, मन व अब दिमाग भी।/पर मैं कामयाब रहूंगी/बचाने में अपने अस्तित्व को।'[1] लेकिन हालात कैसे भी हों आधुनिक स्त्री उनके साथ आगे बढ़ने के लिए प्रयत्नशील है। इस विकसित तकनीक के युग में भी जब इंसान वैज्ञानिक सोच से अपने सबसे उच्चतम स्तर पर पहुंच गया है। लेकिन नैतिक रूप से उतना ही नीचे उतर गया है। सामंती सोच के दुस्साहसी लोग मर्यादाओं का उल्लघंन कर बलात्कार जैसे नीचता की हद को पार कर जाते हैं। इसका दोष भी मासूम लड़कियों को ही दिया जाता है। वार्तिका नंदा की कविता 'वो लड़कियाँ' उस भयानक सच को उजागर करती हैं। जो एक सभ्य समाज के लिए एक कलंक है। जहां आज भी महिला को योनि के पार नहीं देखा जाता है, वह लिखती हैं- 'पेड़ पर दो लड़कियों के शव लटके हुए मिले/उनके साथ बलात्कार हुआ था/फिर उन्हें मार डाला गया-/यह टीवी और अखबार की खबर है/लड़कियाँ लटकी रहीं पेड़ पर/पुलिस पूछती रही जात/पिटती रही माँ/और धर्म और शर्म/घूँघट लिए खड़े रहे चौराहे के सामने लगे/लोकतंत्र के पेड़ के नीचे'[2] सच तो इससे भी भयानक है। क्योंकि कुछ दिनों तक तो ऐसी मार्मिक घटनायें हर जगह वाद-विवाद का केन्द्र बनी होती हैं लेकिन कुछ समय पश्चात ही ये आंदोलन कुंद होने लगते हैं। इस आदमखोर समय में इंसान कैसा अपना व्यवहार परिवर्तन करता है। इसका अंदाजा लगाना मुश्किल होता जा रहा है। रश्मि भारद्वाज की कविता 'यह समय है' इंसानी के गिरगिट से खतरनाक होने का सबब देती है। वे इस परिस्थिति को अपने शब्दों को कुछ इस तरह से व्यक्त करती हैं- 'यह समय है/जब हमारे आस-पास रेंग रहे हैं कई बेखौफ गिरगिट/जो पलक झपकते ही हो जाते हैं हरे या भूरे/खुली आँखे भी देखती हैं फिर एक भ्रम/मिट जाता है फर्क असली और नकली का'[3] इंसान के दोहरे चरित्र की पहचान करना मुश्किल होता जा रहा है। महिलाएँ इस पुरुषों के इस दोहरे चरित्र के कारण ही अनेक तरह से प्रताड़ना की शिकार होती हैं।

---

1. जैन ज्योति, नारी हूं मैं, अहा! जिंदगी, फरवरी पत्रिका, 2015, पृ. 58
2. नन्दा वर्तिका, वो लड़कियां, नया ज्ञानोदय पत्रिका, अगस्त, 2014, पृ. 70
3. भारद्वाज रश्मि, यह समय है, नया ज्ञानोदय पत्रिका, फरवरी, 2017, पृ. 59

पिछले दो, चार वर्ष में दिल्ली में जैसी अमानवीय घटनाओं को स्त्रियों के साथ अंजाम दिया गया। उससे दिल्ली में रहने वाली महिलाएँ ही नहीं दिल्ली से बाहर से जाने वाली स्त्रियां भी खौफजदा थी। शहरी जिंदगी में मानवीय संवेदनाएँ धीरे-धीरे दम तोड़ रही हैं। उसका जीवंत चित्रण सुजाता ने कविता 'यह भी कोई दिल्ली है' में व्यंग्य पूर्ण भाषा में किया है। वे लिखती हैं- 'मैं कतार में हूँ/बेसब्र है पीछे कोई/शोर और बहरापन एक साथ/यहाँ से कहीं नहीं जाया जा सकता/जितनी यातना है उतना मोह/अभी रेंगना है कुछ दूर और/अधूरा अधूरा-सा भरते हुए आँखों में बदरंग/शहर की शाम का आसमाँ'[1] महिलाओं के साथ होने वाली अमानवीय घटनाओं के प्रति प्रतिभा गोटीवाले अपनी कविता 'कोलेस्ट्रॉल' के माध्यम से अपने आक्रोश को कुछ इस तरह से अभिव्यक्त करती हैं-'मैं चीखकर/निकाल देना/चाहती हूं/वो गुबार/जो थमा-सा है/भीतर कहीं/मैं बोल देना चाहती हूं/अब सच को सच/और झूठ को झूठ/किसी की/परवाह किए बगैर....।'[2] आज भी महिलाओं को अपने ढंग से जीवन के प्रति समाज का रवैया ठीक नहीं है, जबकि वही कार्य पुरुष के द्वारा किया जाता है तो उस पर किसी प्रकार का व्यंग्य नहीं किया जाता है, लेकिन अगर उसी मार्ग से होकर एक महिला गुजर जाये तो समाज के सामंती सोच वाले ठेकेदारों को जैसे जलते अग्नि कुण्ठ में डाल दिया हो। ऐसी जलन उनके तन-मन में होने लगती है। जो स्त्री के साथ आज भी दोहरे मानदण्ड का द्योतक है। शबनम राठी की कविता 'शिकायत' में स्त्री की दशा देखिए- 'मेरी आंखों में बंद है आसमान/मेरे पैरों में जमीन/मेरे हाथों में उड़ान/मेरी चुप्पी में है/जमाने भर के संवाद/फिर भी/मुझे रोका जाता रहा है/लेने से सपने/चलने से अनचला डगर/उड़ने से उन्मुक्त गगन में/यहां तक कि/बोलने से भी. ....'[3] स्त्री को आज भी रूढ़ियों के अंधकार में बाँधने को प्रयासरत पुरुषवादी मानसिकता को स्त्रियों से चुनौती मिलनी शुरू हो गयी है। महिलाओं को आज भी कुछ संकीर्ण सोच वाले इंसान खुले आसमां में उड़ने के सपने देखना नहीं चुभने लगता है। कैसे उनकी दंबगई से उनके सपने चकनाचूर हो जाते हैं, इसका यथार्थ एवं मार्मिक चित्रण दीक्षा दुबे कविता 'यादें' के द्वारा करती हैं। वह लिखती हैं- 'उथल-पुथल हो जाता है सब कुछ/टूट जाते हैं सपनों के महल/मटमैला हो जाता है हमारा आज/नहीं जाता है कसैलापन लाख कोशिशों के बाद भी/बहने लगता है खारापन किनारों को तोड़ कर/और हरा हर देता है अपने ही दिये घावों को'[4] अब एक

---

1. सुजाता, यह भी कोई दिल्ली है, नया ज्ञानोदय पत्रिका, फरवरी, 2017, पृ. 60
2. गोटीवाले प्रतिभा, कोलेस्ट्रॉल, पाखी पत्रिका, अक्टूबर-नवंबर, 2015, पृ. 57
3. राठी शबनम, शिकायत, शीतलवाणी पत्रिका, अगस्त-अक्टूबर, 2014, पृ.58
4. दुबे दीक्षा, यादें, पुनर्नवा पत्रिका, 2014/15, पृ. 62

सच जो संपूर्ण समाज के सामने आने लगा है वह यह है कि स्त्री को अधिक समय तक न रूढ़ियों के द्वारा न ही पुरूषवादी सोच के द्वारा घर की चारदीवारी में कैद कर के नहीं रखा जा सकता है। क्योंकि सामंती सोच ने सदियों से स्त्री को अपनी भोग विलास की वस्तु ही समझा है। लेकिन अब स्त्री ने उस चारदीवारी की दीवारों की ईंटों को उखाड़ कर अपनी आजादी का रास्ता बना दिया है। आधुनिक स्त्री में स्वाभिमान एवं चेतना का ऐसा संचार हो गया है। कि उसे कोई भी शक्ति जकड़ कर नहीं रख सकती है। कौशल पंवार की कविता 'तुम्हारी कोशिशें' में सटीक लिखा गया है कि तुम्हारे भाले की नोक/इतनी नुकीली नहीं थी/जो जा सके/मेरे आर-पार।/तुमने तो/मेरे घर तक/जाने वाली/सड़क का रुख भी/कर दिया था/अपनी ओर.....।'[1]

महिलाओं की शक्ति का एहसास इससे किया जा सकता है कि चाहे उन्हें कैसे भी दुखद परिस्थितियां मिली हो उन्होंने सपने देखने नहीं छोड़े यह संपूर्ण स्त्री समाज के लिए एक गर्व की बात है कि जैसी दुखद स्थिति में पुरुष सोचना छोड़ देते हैं, वहां से स्त्री ने सपने देखने शुरू किये ऐसे सपने जो क्रांति का प्रतीक बन रहे हैं। पारुल पुखराज अपनी कविता 'अंतिम प्रहार' में इस क्रांति का आगाज कुछ इस तरह से करती हैं- 'कातर है/नींद के आले में/भूखा कबूतर/दीमक/नि:शब्द कुतरती/चौखट/सपनों की/रात के अंतिम/प्रहर/विरक्त आत्मा/निर्वाण/पथ निहारती/कहीं।'[2] स्त्री सदियों से सहनशील रही हैं। उसने अपना समर्पण हमेशा पुरुष के आगे किया है। लेकिन पुरुष उसके इस समर्पण की भावना को आज तक भी नहीं समझ पाया है। पूनम मनु की कविता 'कविता है कि स्त्री है' के द्वारा स्त्री के समर्पण को कुछ इस तरह से व्यक्त किया गया है- 'भरपूर/करुणा/नेह और/दुलार/स्वभाव में लिये/वह सहती है/असहनीय पीड़ा/हिय की प्रसूति से/नवजात तक की यात्रा में/बावजूद इसके/ताउम्र/वह पोंछती है/बाँटती है/दूसरे का दुख-दर्द/ये कविता है कि/स्त्री है.....!'[3] स्त्री समाज हमेशा से ही आशावादी रहा है और आज जो कुछ रूढ़ियों से उन्हें छुटकारा मिला है, वह उसी आशावादी एवं प्रगतिशील दृष्टिकोण का परिणाम है। रंजना जयसवाल की कविता 'सेमल' भी इसी आशावादी दृष्टिकोण को उजागर करती है- 'बिलकुल काला खुरदरा/हो चुका है सेमल/शिशिर के कारण/पत्ते या तो पीले पड़ चुके हैं/या झड़ चुके हैं/फिर भी ले आया है बसंत/उसकी टहनयों में/हजार-हजार कलियाँ/कलियाँ में जल्द ही/मचेगी खिलने की होड़/और रक्ताभ हो उठेगा/सेमल।'[4]

---

1. पंवार कौशल, तुम्हारी कोशिशें, दलित दस्तक पत्रिका, जून, 2014, पृ. 31
2. पुखराज पारुल, अंतिम प्रहार, गागर्थ पत्रिका, दिसम्बर, 2015, पृ. 81
3. मनु पूनम, कविता है कि स्त्री है, वागर्थ पत्रिका, दिसम्बर, 2016, पृ. 78
4. जयसवाल रंजना, सेमल, वागर्थ पत्रिका, जुलाई, 2015, पृ. 68

स्त्रियों को सदियों से केवल एक राह पर चलना पड़ा है, संघर्ष, वह संघर्ष उन्हें अपने बचपन से जवानी एवं बुढ़ापे तक सारा जीवन दूसरों के लिए ही समर्पित करना पड़ता है। जो आज भी जारी है, उसमें कुछ भी परिवर्तन नहीं आया है। सुभद्रा सिंह शर्मा अपनी कविता 'मैं प्रतिक्षा में हूँ' के द्वारा इस मर्म को उजागर करती हैं, वह लिखती हैं- 'उगते सूरज/उठ जाना/संघर्षों की घानी में/जुत जाना/डूबते सूरज संग/ढल जाना/राहत देगी जब थकान/तब कलम बनूँगी'[1] पूर्ण ईमानदारी से समाज अगर स्त्रियों के योगदान का मूल्यांकन करे तो उन्हें इस बात का एहसास हो जायेगा कि स्त्रियां पुरुषों से ज्यादा सहनशील, परिश्रमी एवं मर्यादित होती हैं। लेकिन उनकी पुरूषवादी सोच उन्हें ऐसा मूल्यांकन करती ही नहीं देती हैं। एक स्त्री का संपूर्ण जीवन दूसरों के लिए होता है। सच में एक स्त्री को वृक्ष एवं नदी की संज्ञा दी जाय, तो इसमें किसी को भी अचरज नहीं होना चाहिए। इस सत्य को मालिनी गौतम अपनी कविता 'छतरियाँ' के द्वारा समाज एवं पुरूषवादी सोच के सामने यथार्थ रुप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न करती हैं, वह लिखती हैं- 'औरतें...../लाल, पीली, नीली, सफेद छतरियों-सी/हर दम तनी हुई/अपने घर परिवार और बच्चों पर/बचाती हुई उन्हें/चिलचिलाती धूप/और मूसलाधार बारिश से.../हर मौसम से जूझते-जूझते/आखिर एक दिन/खुद ही छीज जाती हैं../छोटे-छोटे सुराखों से/गिरने लगता है पानी/पर अफसोस/उनके नसीब में नहीं होती/कोई लाल, पीली, नीली या सफेद छतरी।'[2] समाज में संवेदनाओं का निर्माण ही स्त्री के द्वारा किया जाता है। संवेदनाओं की खान अगर स्त्री को कहा जाय तो यह कोई अतिशयोक्ति नहीं है। जैसे संवदेनाएँ स्त्री रचनाकारों ने अपनी कविताओं में उकेरी हैं उससे यही संभावना मन में घर कर जाती है। कि जीवन का कोई क्षेत्र भी उन से बिना स्पर्श हुये नहीं निकल सका है। इसी स्पर्श को सोनल की कविता 'नि:शब्द दुपहरी' में महसूस किया जा सकता है, वह शब्दों के द्वारा ऐसे बिंबों को बुनते हुए ऐसे यथार्थ का निर्माण करती हैं, जो संवेदनाओं का एक पुंज है। वह लिखती हैं- 'डोल रही है अनगिन भाव/शब्दों के बिना/और अनगिन शब्द/मचा रहे हैं निरर्थक शोर/न इसमें आँसू की नमी/न कोई चहक/न उदासी का धुँधलका/न कोई रौनक/बस करो/इससे तो बेहतर है/कुछ न कहो/उस गिलहरी को देखो/जो अखरोट कुतर रही है/इस नि:शब्द दुपहरी में।'[3]

स्त्री के अंदर का स्वाभिमान उसे विपरीत परिस्थितियों के साथ भी चलने के अग्रसर कर रहा है। मीरा गौतम की कविता 'धारा के विरुद्ध' यह स्पष्ट करती है कि

---

1. शर्मा सुभद्रा सिंह, मैं प्रतिक्षा में हूँ, वागर्थ पत्रिका, अप्रैल, 2015, पृ. 80
2. गौतम मालिनी, छतरियाँ, वागर्थ पत्रिका, जून, 2015, पृ. 81
3. सोनल, नि: शब्द दुपहरी, वागर्थ पत्रिका, सितम्बर, 2014, पृ. 83

स्त्री को किसी भी प्रकार का भय विचलित नहीं करता है। वे लिखती हैं- यात्रा जारी है/धारा के विरुद्ध/समय की नदी/नहीं मिलती समुद्र में जाकर/धारा के विपरीत जाकर ही/पार होती है नौका।'[1] अपने अधिकरों के लिए स्त्री किसी भी संघर्ष का सामना करने को तैयार है। आधुनिक समय में महिलाएं चाहे वह ग्रामीण परिवेश की हों या चाहे शहरी परिवेश की दोनों ही जगह पुरुषों के साथ हर प्रकार की परिस्थिति में चलने के तैयार है। आरती के द्वारा अपनी कविता 'काँटों वाली बाड़' में प्रस्तुत किया गया है। जानबूझकर उगाये हैं मैंने/ये नुकीले काँटे, अपने चारों ओर/आखिर जंगली जानवरों से बचाता ही है/किसान अपने खेत।'[2] अब धीरे-धीरे ही समय आ गया कि बेटियों ने अपना लोहा मनवाना शुरू कर दिया है। बेटियों को एक खिड़की रूपी मौके की तलाश है, वह उसी खिड़की से निकल कर सारे आसमां में उड़ने का हौसला रखती हैं। उमा झुनझुनवाला अपनी कविता 'एक छोटी सी खिड़की' मे इस उड़ान को स्पष्ट करती हैं। वे लिखती हैं- कई दिनों से/छेनी और हथौड़ी हाथों में लिये/ठक ठक किये जा रही हूँ/गुफा में बनानी जो है/एक छोटी सी खिड़की'[3] अनेक प्रकार के संघर्षों के बाद ही स्त्री संपूर्ण समाज के लिए एक मशाल की रोशनी के रूप में सामने आ रही है। शिल्पी जैन की कविता 'मुक्ति' जिन्दगी के कितने ही साल गुजर गये/प्रकाश का कोई रेशा/किसी कोने पर नहीं पड़ा/रहा सदा अछूता/कब और कैसे मिलेगी/किस रास्ते आयेगी/या निजता के किसी खंडहर से/देह के किसी हिस्से में/दबी चिंगारी/स्त्री मुक्ति की मशाल बनेगी।'[4]

स्त्री संपूर्ण समाज का केन्द्र बिन्दु है। इसके बिना समाज का अस्तित्व हो ही नहीं सकता है। वैसे ही परिवार नामक व्यवस्था में स्त्री उस परिवार की धुरी होती है, सुबह से रात तक अपने अनेक प्रकार के कर्तव्यों का निर्वहन करते हुए, हमेशा समर्पित भाव से कार्य करती है। लेकिन विडंबना यह है कि उस स्त्री का ही दुख को पूछने वाला कोई नहीं होता है। वह अपने दुखों को स्वयं ही सहती है, उसे किसी प्रकार का भावात्मक संवेदना किसी से नहीं मिलती है। चेतना वर्मा 'नदी के दुख' में स्त्री के इस मर्म को उजागर करती हैं। किनारे पर खड़ी/मुँह धोती, पैर भिंगोती लड़कियाँ/क्या सबसे पूछती है नदी/उनके दुख/अपने दुखों के कोलाहल/क्या कम सुनती है वह?/सूरज घूमता चला जाता है उसके ऊपर से/चिड़िया तब उसके पास नहीं होती /जब जरूरत होती है उसकी/रात का चंद्रमा दबे पाँव आकर/जब जाने

---

1. गौतम मीरा, धारा के विरुद्ध, वागर्थ पत्रिका, सितम्बर, 2014, पृ. 66
2. आरती, काँटों वाली बाड़, वागर्थ पत्रिका, अक्टूबर, 2015, पृ. 86
3. झुनझुनवाला उमा, एक छोटी सी खिड़की, वागर्थ पत्रिका, अक्टूबर, 2015, पृ. 88
4. जैन शिल्पी, मुक्ति, वागर्थ पत्रिका, अक्टूबर, 2015, पृ. 93

लगता है/पसार देती है नदी अपना आँचल/पूछ ही लेता है चन्द्रमा उसका दुख/और कहता भी है कि नहीं कैसे/सूखीं कितनी नदियाँ'[1]। स्त्री को प्राचीन समय से ही पुरुषवादी सोच ने अपनी जकड़ में रखना चाहा और उसका कारण भी यही था कि उन्हें भी स्त्री शक्ति का पता था। मुक्ता की कविता 'लौट रहा है समय' में देखिए- औरत को लांघते रहे..../वेद मंत्र, ऋचायें, आकाश पाताल को/बाँधने वाली सभी आयतें'[2]। स्त्री को अनेक प्रकार के शारीरिक एवं मानसिक कष्ट अपने एवं बाहरी समाज के लोगों के द्वारा दिये जाते हैं। लेकिन फिर भी वह अपने अस्तित्व को बचाए रखने के लिए संघर्षरत है और उसमें उसे कामयाबी भी मिली है। नीलम सक्सेना ने अपनी कविता 'कढ़ाई एहसास की' में इस मर्म को इस तरह व्यक्त किया है, और कुछ टांकों को/आसान नहीं होता काढ़ना/क्योंकि उनको बिखरते वक्त/सुई उंगली को भी चुभो देती है/दर्द बहने लगता है/रक्त बनकर/और रह जाते हैं कुछ उदास निशां/हमेशा हमेशा के लिए....'[3]

समय परिवर्तन लेकर आता है, यह आधुनिक परिवेश को देखा कर कहा जा सकता है? लेकिन समस्या तब आ गयी जब इस परिवर्तन की गति कछुआ चाल से भी धीमी है। लेकिन स्त्री शक्ति ने परिवर्तन को तेज गति से लानी में अपनी ऊर्जा को लगा दिया है। बदलाव समाज में आ रहा है, लेकिन अभी वह बदलाव संपूर्ण समाज में आने के लिए झटपटा रहा है। पूजा खिल्लन अपनी कविता 'जिद्दी अक्षर' के द्वारा नव समकालीन स्त्री जिद्द को सुंदर शब्दों में अभिव्यक्त करती हैं, वह लिखती हैं- जिद्द करना स्वप्न देखना है दुनिया/को बदलने का/देखा जाए, दुनिया में सबसे जिद्दी हैं/अक्षर/पकड़कर चलते हैं अपना मर्म/मार्ग में आने वाले सब संशयों को/करते हैं जैसे निर्मूल/फैलते हैं जैसे जंगल में आग/बदलते हैं तो इस तरह की खुद बदलने/को भी पता नहीं चलता'[4] नव समकालीन समय में स्त्री को पुरुषवादी सोच झूठे ढोंगों में जकड़ कर नहीं रख सकती है। वह किसी प्रकार के गलत निर्णयों का विरोध करने के लिए तत्पर है। रजनी अनुरागी ने अपनी कविता 'घालमेल' के द्वारा अपने आक्रोश को कुछ इस तरह से अभिव्यक्त किया है- उसने कहा सब तकदीर का खेल है/मैंने कहा/नहीं...../सब हमारी तृष्णाओं, सामाजिक दबावों/गलत निर्णयों का घालमेल है..!!!'[5] सामाजिक एवं पारिवारिक रूढ़िवादी निर्णयों के विरोध की भावना

---

1. वर्मा चेतना, नदी के दुख, वागर्थ पत्रिका, जून, 2016, पृ. 73
2. मुक्ता, लौट रहा है समय, वागर्थ पत्रिका, मई, 2015, पृ. 69
3. सक्सेना नीलम, कढ़ाई अहसास की, कथाक्रम पत्रिका, अक्टूबर-दिसम्बर, 2015, पृ. 91
4. खिल्लन पूजा, जिद्दी अक्षर, आजकल पत्रिका, नवम्बर, 2016, पृ. 62
5. अनुरागी रजनी, घालमेल, दलित साहित्य (वार्शिकी), 2013, पृ. 323

स्त्री में आज ही नहीं, प्राचीन समय में भी देखने को मिलती है। मीरा के द्वारा सामाजिक एवं पारिवारिक निर्णयों को चुनौती दी गयी। प्रियंका सोनकर की कविता 'साहसी मीरा या बावली मीरा' में वह प्रतिरोध का सौन्दर्य देखा जा सकता है वे अभिव्यक्त करती हैं- जब शासन था तानाशाहों का सामन्तों का/स्त्रियाँ....नहीं ले सकती थी ऊंघ/सांसे लेना और आंहे भरना तो दूर/कहो मीरा!/कैसे किया था तुमने ये सब?/कहां से आई तुममें वह शक्ति/और आत्मविश्वास'[1]। आधुनिक समय में स्त्री के अंदर उस प्रतिरोध के सौन्दर्य का विकास उच्च स्तर तक हुआ है और धीरे-धीरे वह विकसित अवस्था तक पहुंच रहा है।

एक स्त्री अनेक प्रकार की भूमिकाओं को बखूबी निभाती है और किसी प्रकार आह उसके मुंह से नहीं निकलती है। उसे सपाट शब्दों के द्वारा निर्मला तोदी ने अपनी कविता 'मेरे भीतर वह भी है' में स्पष्ट अभिव्यक्ति देती हैं एक स्त्री मेरे भीतर और भी है/चाहती है कुछ करना कर नहीं पाती/बताना भी चाहती है बता नहीं पाती/कभी मेरे साथ होती है/कभी दूर चली जाती है/मैं रोती हूं वह खिलखिलाती है/नजदीक आकर फुसफुसाती है/सपने दिखाती है/चिकोटी काटकर जगाती है/कमरे में मैं रहती हूं/एक स्त्री मेरे भीतर और भी है।'[2] वास्तविक धरातल पर चलने पर हम स्वयं इस सत्य को स्वीकार करने लगते हैं कि एक स्त्री के अंदर अनेक भूमिकाओं में अनेक स्त्रियां विराजमान हैं। वंदना सहाय अपनी कविता 'वंश वृक्ष' के द्वारा उस मार्मिक व्यथा को उजागर करती हैं कि कैसे आज भी एक बेटी को गर्भ में ही मारने की साजिश की जाती है और अगर वह उस साजिश में जिंदा रह जाती है तो फिर कैसे उसे उसके जन्म के बाद अनेक तरह की यातनाओं से गुजरना पड़ता है। वे लिखती हैं- बस इसलिए हम तुझे नहीं चाहते हैं/न तू हमें कंधा देने के काबिल है/और न ही मोक्ष दिलाने के/तू हमारे वंश का हिस्सा नहीं भी/अब वह चुप हो गई थी/कोख के अंधकार में/क्या करेगी वह ऐसी दुनिया में जन्म लेकर/जहां वंश-वृक्ष/उसके बिना पूरा है।'[3] बेटियों के साथ आधुनिक समय में भी कैसे दोयम दर्जे का व्यवहार किया जाता है। इसकी मार्मिक अभिव्यक्ति श्रुति दुबे ने अपनी कविता 'कौन जात तुम...हम' में की सुनउ महाराज/तुम्हारी भैंस कौन जात है/कि उसे ढंढूने खातिर/पुलिस महकमा हलकान हो गया/हमारी तो बिटिया खो जाने पर भी/दरोगा ने नहीं लिखी थी रिपोर्ट ....'[4] लेकिन फिर भी वही बिटिया आज ऊँचे पहाड़ जैसे लक्ष्यों को प्राप्त कर रही

1. सोनकर प्रियंका, साहसी मीरा या बावली मीरा, युद्धरत आम आदमी पत्रिका, सितम्बर, 2014, पृ. 48
2. तोदी निर्मला, मेरे भीतर वह भी है, युद्धरत आम आदमी पत्रिका, सितम्बर, 2014, पृ. 48
3. सहाय वंदना, वंश-वृक्ष, परिकथा पत्रिका, जुलाई-अगस्त, 2014, पृ. 90
4. दुबे श्रुति, कौन जात तुम-हम, परिकथा पत्रिका, जुलाई-अगस्त, 2014, पृ. 91

है और बहुत सारे क्षेत्र ऐसे भी जहां वे पुरुषों से भी आगे निकल चुकी है और कुछ में बराबरी पर है। रिम्पी खिल्लन की कविता 'पहाड़' में उसके उन दृढ़ लक्ष्य को संकल्पित किया है, जिन्हें पाने के लिए वह किसी भी हद को पार कर सकती है। रास्ते भर पहाड़/अपनी जड़ता को छोड़कर/उसके साथ चलता रहा/उसे ढांढस बंधाने /कि अपनी इन ऊँचाईयों की यात्रा में/वो अकेला नहीं है/पहाड़ उसके साथ है'[1] बाबुशा कोहली ने अपनी कविता 'हुसैन की निर्वासित देवी के लिए' में उस समाज को आईना दिखाया जो स्त्री को केवल एक भोग वस्तु के रूप में देखता है। वह यह समझाने का प्रयत्न करती हैं कि वही वक्ष स्थल जब एक बच्चे को दूध पिला कर जीवन देता है, तो उसे नग्न नहीं कहा जा सकता है लेकिन उसी वक्ष स्थल को एक वहसी दरिंदा अपनी काम वासना के लिए सरेआम नग्न कर देता है, तो वह नंगई सोच का परिणाम है। इसे ही वह शब्दों के आक्रोश द्वारा व्यक्त करती हैं वे लिखती हैं- संसार भर के शब्दकोश उलट पलट दो/तब भी न समझ आएगा नग्नता और नंगई को अंतर/उँगलियाँ कट गिरें या गले रेत दिए जाएँ/फिकिर किसे?/दुनिया के संविधान का कोई प्रावधान नहीं दिखता'[2] आधुनिक समाज में आर्थिक रूप अशक्त स्त्री का ही नहीं आर्थिक रूप से सशक्त स्त्री का जीवन भी पुरुषवादी सोच का दंश किसी न किसी तरह से झेल रही है। आलीशान घरों में एक स्त्री का जीवन आज भी कितना कष्टपूर्ण है, इसकी मार्मिक अभिव्यक्ति संध्या नवोदिता ने अपनी कविता 'खूबसूरत घरों में' के द्वारा की है, वे लिखती हैं- खूबसूरत घर/बन जाते हैं/खूबसूरत औरतों की कब्रगाह/खूबसूरत घरों में/उड़ेल दी जाती हैं खुशबुएं/हजारों हजार मृत इच्छाओं की बेचैन/गंध पर/करीने से सजे सामानों में/दफ्न हो जाती हैं तितलियां/सब कुछ चमकता है/खूबसूरत घरों में/औरतों की आंखों के अलाव से!'[3]

निष्कर्ष-

हमारे इस वैज्ञानिक तकनीक से विकसित समाज के लिए यह बड़ा ही दुर्भाग्यपूर्ण है कि आज भी स्त्री को पुरुषवादी सोच किसी न किसी प्रकार से घर या समाज के किसी भी कोने में किसी न किसी अंश में प्रताड़ित तो कर ही रही है। यदि वह सशक्त है तो उसका विरोध होगा और यदि वह अशक्त होगी तो उसका शोषण होगा। महिला रचनाकरों की इन रचनाओं का शोधपरक अध्ययन करने के पश्चात् हम एक बात को स्पष्ट रूप जान गये कि इनके काव्य में जो मर्म उजागर

---

1. खिल्लन रिम्पी, पहाड़, लमही पत्रिका, अप्रैल-जून, 2015, पृ. 96
2. कोहली बाबुशा, हुसैन की निर्वासित देवी के लिए, लमही पत्रिका, अप्रैल-जून, 2015, पृ. 97
3. नवोदिता संध्या, खूबसूरत घरों में, आजकल पत्रिका, मार्च, 2016, पृ. आवरण, 3

हुआ है, वह काल्पनिक नहीं है। वह एक ऐसे वास्तविक धरातल पर उपजा है, जहां सिर्फ और सिर्फ स्त्री रूपी धरा के चारों ओर कांटों की बाड़ करके पुरुषवादी सोच ने अपने स्वाार्थ एवं अहंकार की फसल को उगाया है। साहित्य से जिस चेतना की उम्मीद की जाती है, वह महिला रचनाकारों की अभिव्यक्ति में स्पष्ट रूप चित्रित किया जा रहा है। आज समाज बदलाव की बयार से गुजर रहा है और इससे स्त्री सशक्तिकरण भी अछूता नहीं है। साहित्य में स्त्री को अधिकांशत: देह के रूप में देखा गया है। उसकी संवेदनाओं एवं विचारों को स्त्री के मोहक रूप दिया गया है। जो धारणा समकालीन कविता में स्त्री रचनाकारों के द्वारा तोड़ी गयी और नव समकालीन कविता की रचनाकारों ने इसे पूर्ण रूप से संवेदनायुक्त एवं विचार प्रधान कर दिया है। संवेदना का संबंध भाव से होता है, जैसी भावना रचनाकार के अंदर से गुजरती है, वह उसी को शब्दों में ढाल देती है। अब यह शुभ संकेत है, कि अब समाज रूढ़ियों की जकड़ से बाहर निकलना चाहता है। साथ ही स्त्री समाज के प्रति होते बदलावों को वह धीरे-धीरे ही स्वीकार करना सीख रहा है। जो एक सभ्य समाज के लिए अनिवार्य तत्त्व है। इस प्रकार हिंदी साहित्य में नारी अभिव्यक्ति की राह आसान होती जा रही है, जो एक सभ्य समाज के लिए शुभ संकेत है।

✦✦✦

प्रमुख गढ़वाली कवियों के काव्य में भारतीय संस्कृति का प्रभाव

–डॉ० मीना पंवार

मानव जीवन की शैली हमारी संस्कृति है। संस्कृति हवा में नहीं रहती है उसका अपना मूर्तिमान रूप होता है। मानव जीवन के अनेक रूपों का समुदाय संस्कृति है मानव प्रकृति की उपज है। मानव ने पृथ्वी पर जन्म के साथ ही अपने आस-पास के वातावरण में रहकर समुदाय व परिवार को जन्म दिया और अपनी आवश्यकता एवं इच्छानुसार अपना स्वतन्त्र परिवेश बनाया। इस परिवेश में सपरिवार सहयोगी एवं सहधर्मी लोग निवास करने लगे। इस तरह से एक अलग स्वतन्त्र भू-भाग विकसित हुआ जो किन्हीं लक्षणों में अन्य क्षेत्रों से भिन्न हुआ और उस क्षेत्र विशेष की अपनी पृथक संस्कृति पहचान बन गयी। यहीं से संस्कृति भू-दृश्यों का अभ्युदय हुआ। कहने का भाव है कि जब किसी क्षेत्र विशेष में अन्य क्षेत्रों से पृथक सांस्कृतिक लक्षणों का प्रादुर्भाव हो तो वह क्षेत्र विशेष सांस्कृतिक प्रदेश कहलाता है।

संस्कृति शब्द संस्कृत के 'कृ' (करना) धातु में सम 'सम्यक' उपसर्ग और रितन प्रत्यय के योग से बना है जिसका शाब्दिक अर्थ है सम्यक् रूप से किया जाने वाला आचार-व्यवहार। व्यावहारिक रूप में संस्कृति का तात्पर्य है- समस्त ज्ञान विज्ञान, कला दर्शन, खान-पान, वेश-भूषा, रहन-सहन आदि में परिष्कार एवं वैशिष्ट्य के किसी भी क्षेत्र सर्वांगीण विकास के लिए वहाँ के समाज में उस देश की जलवायु परिवेश एवं परिस्थितियों के अनुरूप जो आचार व्यवहार प्रचलित होता है, वह ही उसकी संस्कृति कहलाती है। भारतीय संस्कृति किसी एक समाज में पायी जाने वाली उच्चतम मूल्यों की वह चेतना है जो सामाजिक प्रथाओं, व्यक्तियों की चित्तवृत्तियों, भावनाओं, मनोवृत्तियों, आचरण के साथ-साथ उसके द्वारा भौतिक पदार्थों को विशिष्ट स्वरूप में दिए जाने में अभिव्यक्त होती है। अपनी क्षेत्रीय भिन्नताओं के कारण यद्यपि प्रत्येक देश का संस्कृति बाह्य रूप में एक दूसरे से भिन्न दिखाई देती है तथापि आन्तरिक दृष्टि से अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि मूलरूप में वे एक ही है, क्योंकि किसी भी देश अथवा क्षेत्र की संस्कृति का मूल उद्देश्य है- व्यक्ति को संस्कारित करके उसका सर्वांगीण विकास करना और किसी भी समाज का वास्तविक

विकास तभी सम्भव है जबकि उस समाज के लोग सभ्य एवं संस्कारिक होंगे। भारतीय ऋषि-मुनियों ने जिन सांस्कृतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा की थी उनका महत्त्व सर्वविदित है वे मूल्य न तो कभी पुराने होते हैं और न ही विलुप्त होते हैं, वे मूल्य आज भी उतने ही उपयोगी हैं, इन्हीं मूल्यों की अभिव्यक्ति हमारे साहित्यकारों ने अपने साहित्य के माध्यम से संस्कृति चेतना जगाए रखने के कारण की है। इस में अतीत का गौरवगान प्रमुखता से अभिव्यक्ति है, क्योंकि किसी भी देश की सांस्कृतिक चेतना उसके अतीत की संचित निधि होती है।

हिमालय भारतीय संस्कृति का ही नहीं अपितु आदिम मानव की संस्कृति का प्रसार केन्द्र रहा है अनेक इतिहासकारों एवं हिमालयी संस्कृति संरक्षण कर्त्ताओं ने इतिहास का पुनर्मूल्यांकन एवं अन्वेषण कर उस सच्चाई का पता लगाने का पर्याप्त प्रयास कर लिया है कि प्रथम मानव ने पृथ्वी पर जिस क्षण अपनी आँखे खोली थी वह स्थान 'हिमालय क्षेत्र ही था कि यूरोप या रूस का उत्तरी भाग। एक फ्रांसीसी विद्वान एम० लुई जैकालियट ने 'बाइबिल इन इण्डिया' में लिखा है कि भारत विश्व का आदि देश है। यह मनुष्य जाति की जननी और हमारी समस्त परम्पराओं का जन्म स्थान है। प्रत्येक क्षेत्र की अपनी विशेष संस्कृति होती है, जो वहां के मनुष्यों के लिए विशेष महत्व रखती है। उत्तराखण्ड एक ऐसा क्षेत्र है जो अभी तक संस्कृति के प्राचीन शुद्ध रूप के धारण किये हुए है इसका मुख्य कारण यातायात के साधनों के अभाव में दीर्घकाल तक यहां के लोगों का बाह्य लोगों से सम्पर्क न था। उत्तराखण्ड की संस्कृति में हमें कई रूपों में भारत की प्राचीन संस्कृति तथा यहां के निवासियों के विचारों में प्राचीन आदर्शवाद की झलक मिलती है।

भारतीय समाज में संस्कृति वह कुंजी है जो मानव समाजों एवं मानव प्राणियों के विश्लेषण का द्वार खोलती है एवं वास्तव में मनुष्य के विचारों गति विधियों एवं जीवन के प्रत्येक पक्षों का निर्देशन एवं निर्धारण संस्कृति द्वारा ही होता है। किसी एक समाज के जीवन में समाहित हो जाती है, कहने का आशय है कि किसी राष्ट्र, देश अथवा जन समुदाय की प्राचीनतम परम्परा से जो विचार मूल्य, धर्म स्थापनाएँ, मान्यतायें, आदर्श दर्शन, कला-साहित्य, संस्कार, कार्य, व्यापार, ज्ञान-विज्ञान, सभ्यता और विश्वास नये रीति-रिवाज व रहन-सहन आदि जो सम्मिलित होकर पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ते है और जिससे एक सुसंगठित स्वरूप का ज्ञान होता है, वही संस्कृति कहलाती है। संस्कृति की कोई निश्चित परिभाषा नहीं बनी है, फिर भी यह मानना पड़ेगा कि संस्कृति एक ऐसी वस्तु है, जो हमारे जीवन में वर्षो से ही प्राप्त है।

गढ़वाल हिमालय भारत भूमि का क्षेत्र है जिसको प्रकृति ने अपना अपार वैभव प्रदान किया है। यहां तक कि बर्फ से ढके पर्वत बुग्याल और फूलों की घाटियां तथा

करधनी की तरह उससे लिपटी नदियां अपना अपार सौन्दर्य समेटे है। उत्तराखण्ड के देवदार और चीड़ के वन उनमें विचरण करते, पशु-पक्षी सबका यहां निराला संसार है। धार्मिक दृष्टि से यह तीर्थो, देवी-देवताओं के निवास स्थान और ऋषि मुनियों के आश्रम की भूमि रही है। यही नहीं, संस्कृति के नए अंकुर इसी भूमि में प्रस्फुटित हुए हैं। भारत देश की तरह गढ़वाल में भी पीपल के वृक्ष की पूजा माननीय है। गढ़वाल का लोक हिमालय की गोद में अपने ही खेतों, कूलों, धारों, नदियों, वन पर्वतों, फूलों की घाटियों घुघती कफु और मोनाल आदि में घुलमिल कर युगों-युगों से नाचता गाता रहा है। अतः आर्थिक दृष्टि से भले ही दैन्य हो किन्तु सांस्कृतिक दृष्टि से पूर्ण सम्पन्न है। इसके हिमधवल, शैलश्रृंग, सदानीरा, पावन नदियों के पवित्र संगम फेनिल निर्झर निर्मल सरोवर जग विख्यात इसके चारों धाम घाटियों और चोटियों पर बसे उसके मठ, मन्दिर कलात्मक मूर्तियाँ ऐतिहासिक ताम्रपात्र एवं शिलालेख आदि अपने में एक समृ) सांस्कृतिक सम्पदा को संजोये हुए है। उत्तराखण्ड की सदानीरा नदियों की तरह यहाँ की संस्कृति भी निरन्तर देश के अन्य भागों की ओर प्रभावित होती रही। इस गंगापथ के अध्याय व रम्य आकर्षण ने किसी भी युग में इस सांस्कृतिक का प्रवाह को स्थिर नही रहने दिया गंगा की धारा के समान उसी के किनारे-किनारे तीर्थ यात्रियों की अजेय प्राणधारा भी अबोध गति से दौड़ती रहती है। कवि नरेन्द्र सिंह नेगी ने 'कृत' गाण्यूं की गंगा और स्याण्यू का समोदर में भारतीय लोक संस्कृति को उजागर करते हुए कहा-

खैरि का अँधेरों मा खुज्यूँ बाटू,
सुख का उज्याला मा बिरडि गयूँ

आँखा बूजिकि खुलदिन गेड,
आँखा खोलिकि अकझि गयूँ

उमर भप्पे की बादल बणियों
उड़दा बादल हेर्दि रयूँ

रूप का फेंण मां सिंवाकनि देखी,
खस्स गैडू अर रड़दि गयूँ।

प्रत्येक समाज की अपनी संस्कृति होती है जो पारम्परिक रूप से अर्जित परम्परा, ज्ञान धर्म सामाजिक चेतना आदि का मिश्रित रूप है। संस्कृति मानव विकास की सर्वोच्च चेतना की अभिव्यक्ति का साधन है और राष्ट्रीय जीवन का संस्कार जिन तत्वों से होता है उसे ही संस्कृति कहते हैं। मनुष्य स्वाभाविक रूप से सौन्दर्य प्रेमी है, उसे न सिर्फ सौन्दर्य से प्रेम है, बल्कि विभिन्नता से भी प्रेम है। अपने इसी

स्वभाव के कारण रचनाकार कोई भी सहृदय व्यक्ति जीवन में कदम-कदम पर सौन्दर्य की सृष्टि या तो करता है या होते हुए देखना चाहता है। परिणामस्वरूप यह रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा तथा विचारों की सटीक अभिव्यक्ति करने वाली शैली संस्कृति की तलाश करती है। लोक गायक नेगी जी ने सौन्दर्य पर व्यक्त करते हुए लिखा है-

कै गौंव की वेली स्या बांन्द कनि भलि दिख्यादी
फूंकी जनी हलकणी च यनीत नथुली झलकणी च
कन्दुड़ी मुरखलियों न भरी च गल्का हसुली चुबकी स्वादी,
कै गौव की होली स्वा बान्द कनी भली दिख्यांदी।

कवि नेत्र सिंह असवाल ने भारतीय संस्कृति को परिभाषित करते हुये अपनी रचना अज्वांल में लिखा कि संस्कृति का सम्बन्ध सामाजिक जीवन से अधिक है जब आदमियों का दल या समाज एक ही रीति से कुछ करता है। एक विश्वास रखता है, पूर्वजों के कामों को समान रूप से अपने आदर गर्व और गौरव की चीख समझता है, तो इस तरह संस्कृति का जन्म होता है। संस्कृति मानव के सामाजिक जीवन का प्राण है, जैसे कवि वेशभूषा की बात को तो अपने शब्दों के माध्यम से मेले में रेशमी रूमाल लाते किशोर तथा हिरणी के नैन की तरह नायिका को बताया, पानी लाती ग्रामीण बालाओं के झुंड और खेतों में घास काटती महिलाओं के पोषाक का वर्णन अपनी काव्य रचना में इस तरह की है-

दादु मिन पोत की देखीने ल्हेंद मिन रेशमी रूमाल
देखी मिन कैथिगुम हिरणी आख्यूँ माँ बटुक्थोन चाँद
ल्यांदि मिल पाणि को कस्यारी दादु रे घिडुड़ी दयाखिने
सरिउ दाथुडीर पकयांदा दादु रे घुघती देखीने॥

संस्कृति समाज के संस्कारों पर आश्रित होती है। संस्कार पारस्परिक विरासत के रूप में मिलती हुई अमूल्य अंश है यह रूढ़ि का नहीं मगर सामाजिक चेतना का प्रतीक है, जो समुदाय का सार्वजनिक रूप से पल्लव तथा मानव कल्याण में सार्थक सिद्ध होता है। संस्कृति का मूल समाज क्रियाकलापों पर आश्रित होता है। इसमें मानव जीवन की अच्छाई व बुराई छिपी होती है। संस्कृति मानव की सामाजिक विरासत है, व्यक्ति के लिए समाज का सबसे बड़ा उपहार संस्कृति है, संस्कृति प्रकृति की देन नहीं बल्कि समाज की भी देन है। कवि चक्रधर बहुगुणा द्वारा 'कृत' मोछग में लिखा कि भारतीय संस्कृति मानव समाज को सुव्यवस्थित और सांस्कृतिक रूप प्रदान करती है। समाज की स्थिति को संस्कृति उजागर करने में पूर्ण सहयोग प्रदान करती है। संस्कृति मानव जीवन का अत्यन्त संवेदनशील पहलू है।

डॉ० गोविन्द चातक के मतानुसार गढ़वाली लोक संस्कृति यदि कहीं स्पान्दित होती है तो यहाँ के लोग गीतों में लोकगाथाओं, लोकनृत्यों, पवाड़ों में लोकोक्तियों में, मुहावरों में ही होती है, जिसे उन्होंने लोकसाहित्य के अन्तर्गत रख दिया है। संस्कृति का निमायक तत्व गढ़वाल का भूगोल भी है। गढ़वाल हिमालय गंगा यमुना का पवित्र उद्‌गम स्थल है। इस दृष्टि से देखा जायेगा तो गढ़वाल की संस्कृति सम्पूर्ण भारत की संस्कृति को प्रभावित करती है। क्योंकि भारत वर्ष की संस्कृति के दो महत्वपूर्ण घटक हैं गंगा-यमुना और हिमालय ये दोनों उत्तराखण्ड की पावन धरती में स्थित है।

कवि भजन सिंह ने अपनी रचना सिंहनाद में गढ़वाली नारी की मनोदशा का वर्णन इस प्रकार किया है-

फ्रांस की भूमि से खून से लाल च
उख लिख्यूँ खून से नाम गढ़वाल चच
रैंद चिन्ता बडौ तै बड़ा नाम की
काम की फिक्र रैंद न ईनाम की॥

गढ़वाल की संस्कृति उत्साह और त्यौहारों तथा नृत्यों का धनी है। यहाँ सालभर में कई उत्साह और नृत्य होते हैं। गढ़वा लमें उत्सव और त्यौहार लोगों की सजगता समृद्धि और उनके सुखी जीवन में प्रतीक है। यहां लोक गीतों तथा काव्य में प्रकृति अनेक रूपों से मुखरित हुई है। यहाँ प्रकृति मानवीकरण के रूप में अभिव्यक्ति हुई है। उत्तराखण्ड की संस्कृति के अन्तर्गत सम्पूर्ण भाव तक धर्म दर्शन और विश्वास का महत्वपूर्ण पहलू सामने आता है इसके साथ-साथ परम्परायें, मान्यतायें एवं रीति-रिवाज भी हैं। विश्वभर में कई हिन्दू धर्म की आस्था के केन्द्र बदरीनाथ, केदारनाथ पवित्र धाम भी यही हैं।

माँ जीवन दायनी गंगा-यमुना की नहर भी इसी क्षेत्र में है, तो पाँच प्रयागों क स्थान तीर्थ नगरियों के रूप में हरिद्वार, ऋषिकेश भी इसी पावन भूमि में स्थित है, शिवजी का प्रिय निवास स्थान हिमालय ही मात्र गया है। यहाँ केदारनाथ के अतिरिक्त मदमहेश्वर, रूद्रनाथ, तुंगनाथ, कल्पेश्वर, पांच केदार में विभाजित किए गये हैं। गढ़वाल में जनश्रुतियों के अनुसार माना गया है कि (श्रीनगर) कमलेश्वर में राम के द्वारा सहस्त्र कमलों से शिव की आराधना की गयी थी। शिव भगवान से सम्पूर्ण जन जीवन जुड़ा है। प्रत्येक क्षेत्रों, गाँवों आदि में शिवालय की संख्या अधिक है।

अतः संस्कृति क्रियाकलापों पर यहां के मिश्रित समाज का स्पष्ट प्रभाव रहा है। संस्कृति शब्द विविध अर्थो का द्योतक एक वाहक है इसका मानव जीवन के विविध क्रिया-कलापों उनके सही सामाजिक स्वरूपों और मानवता को सही दिशा प्रदान करने वाले तत्वों से घनिष्ठ सम्बन्ध है। संस्कृति देशकाल और स्थान का प्रमुख

विभेदक स्वरूप है। यह मानव चेतना और उसके भाव के स्वरूपों से सम्बन्ध होती है, जो परिवर्तनशील है, संस्कृति शब्द उसी धातु मूल से निष्पन्न हुआ है जिसमें संस्कृति के द्वारा सामान्य जनता में प्रचलित आस्था विश्वास परम्पराएँ एवं रीति रिवाज का पता लगता है। इस प्रकार भारतीय संस्कृति का प्रणपन ऋषि-मुनियों द्वारा उत्तराखण्ड की उपत्याकाओं और कन्दराओं में हुआ। इस संस्कृति की आधार-शिला, देवभूमि उत्तराखण्ड के तीर्थस्थलों गंगा के पावन तट तथा हिमालय की गुफाओं में रखी गयी। हम कह सकते हैं कि उत्तराखण्ड की संस्कृति का अर्थ है भारतीय संस्कृति। संस्कृति का बोध कराने वाले तत्व ही सांस्कृतिक तत्व है, संस्कृति शब्द अपने में अति व्यापक है जिसके आधार पर आत्मा, परमात्मा, जीवन-मरण, सुख दुख परात्माभाव और निराभिमानित आदि उलझी हुई गुत्थियों का समाधान प्राप्त होता है।

ग्रन्थ-सूची

1. डॉ कृष्ण देव उपाध्याय- लोक साहित्य ही भूमिका।
2. डॉ० सच्चिदानन्दराय- हिन्दी उपन्यास सांस्कृतिक एवं मानवतावादी चेतना।
3. डॉ० गोविन्द चालक- भारतीय लोक संस्कृति का सन्दर्भ मध्य हिमालय।
4. डॉ० शिवप्रसाद नैथानी- उत्तराखण्ड संस्कृति साहित्य और पर्यटक।
5. डॉ० गोविन्द चालक- गढ़वाली लोकगीत एंव सांस्कृतिक अध्ययन।
6. वासुदेव शरण अग्रवाल- कला और संस्कृति।

✦✦✦

उत्तराखण्ड राज्य में लिंगानुपात का बदलता परिदृश्य

–डॉ० नीमा भेतवाल
हे.न.ब.ग.के. विश्वविद्यालय
श्रीनगर गढ़वाल

प्रस्तावना :-

किसी भी राष्ट्र, प्रदेश या क्षेत्र की अर्थव्यवस्था एवं विकास में लिंगानुपात की महत्वपूर्ण भूमिका होती है, जो किसी भी राष्ट्र की सामाजिक-आर्थिक दशाओं का एक महत्वपूर्ण सूचकांक होता है। एस०एच० फ्रैकलिन के अनुसार लिंगानुपात किसी क्षेत्र में वर्तमान सामाजिक व आर्थिक दशाओं का सूचक होता है और क्षेत्रीय विश्लेषण के लिए उपयोगी साधन होता है। अतः लिंगानुपात जनसंख्या संरचना का एक महत्वपूर्ण पक्ष है। इसमें असन्तुलन होने से जनसंख्या में असन्तुलन होने लगता है, जो किसी भी राष्ट्र के लिए अति हानिकारक है। यद्यपि दोनों लिंगों की (प्राकृतिक) संख्या अप्रत्याशित रूप में नहीं रहती परन्तु उनके अन्तर भूगोलवेत्ताओं के लिए इसलिए रूचिकर है क्योंकि अर्थव्यवस्था एवं समाज में दोनों की भूमिका वैषम्य है।

भारत एक विकासशील राष्ट्र है यहां महिला, पुरुष में अथवा लिंगानुपात में असन्तुलन के कई कारण हैं जिनमें सामाजिक, आर्थिक कई कारकों का महत्वपूर्ण योगदान है। भारत में यौन अनुपात विश्व के औसत (984) से बहुत कम है, वस्तुतः भारत में यौन अनुपात बीसवीं सदी के प्रारम्भ से ही नकारात्मक (अर्थात् महिलाओं के प्रतिकूल) रहा है। विश्व मानव विकास रिपोर्ट 2011 के अनुसार हमारा राष्ट्र कुल लिंगानुपात (943) की दृष्टि से बहुत पीछे अर्थात् 129 वें स्थान पर है। हालांकि राष्ट्रीय परिदृश्य के आधार पर कुल लिंगानुपात में वृद्धि हुई है जो सन् 2001 में 933 था तथा 2011 में बढ़कर 943 हो गया। अतः +10 की वृद्धि हुई। उत्तराखण्ड राज्य में जहां बाल लिंगानुपात में ह्रास देखा गया वहीं सामान्य लिंगानुपात में (+1 की) वृद्धि हुई है। जिसका प्रमुख कारण शिक्षा, स्वास्थ्य आदि सुविधाओं का विकास है।

भौगोलिक पृष्ठभूमि :-

उत्तराखण्ड राज्य का गठन 9 नवम्बर 2000 को हुआ। इससे पूर्व यह उत्तर प्रदेश राज्य का अंग था। उत्तराखण्ड राज्य भारत के उत्तर दिशा में 280 7' से 310

4' उ० अक्षांश व 770 7' से 810 1' पूर्व देशान्तर रेखाओं के मध्य स्थित है। राज्य को विभिन्न विशेषताओं के आधार पर 2 मण्डलों में विभक्त किया गया है। गढ़वाल मण्डल एवं कुमाऊँ मण्डल में, राज्य में 13 जिले हैं इनमें 7 गढ़वाल मण्डल तथा 6 कुमाऊँ मण्डल में हैं। राज्य का अधिकांश भाग पर्वतीय तथा शेष भाग मैदानी है। राज्य का कुल क्षेत्रफल 53,483 वर्ग किलोमीटर है। उत्तराखण्ड राज्य की राजनैतिक सीमायें उत्तर में चीन (तिब्बत), पूर्व में नेपाल, दक्षिण में उ०प्रदेश एवं पश्चिम में हिमाचल प्रदेश तथा प्राकृतिक सीमा उत्तर में हिमालय पर्वत, पूर्व में काली नदी, दक्षिण में उ० प्रदेश के तराई क्षेत्र तथा पश्चिम में टोंस नदी द्वारा निर्धारित होती है।

अध्ययन का उद्देश्य :-

प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य उत्तराखण्ड राज्य के बदलते हुए लिंगानुपात के परिदृश्य को स्पष्ट करना है। इससे सम्बन्धित प्रमुख तथ्य निम्नलिखित हैं-

1. राज्य में दशकवार लिंगानुपात के बदलते स्वरूप को स्पष्ट करना।
2. राज्य में जनपदवार लिंगानुपात में हुए परिवर्तन को स्पष्ट करना।
3. लिंगानुपात को प्रभावित करने वाले कारकों की व्याख्या करना।
4. साक्षरता प्रतिशत में हुई वृद्धि का लिंगानुपात से सम्बन्ध स्पष्ट करना।

कार्य विधि :-

प्रस्तुत शोध-पत्र जनसंख्या के द्वितीयक प्रकार के आंकड़ों पर आधारित है। जनसंख्या से सम्बन्धित द्वितीयक प्रकार के आंकड़ों की उपलब्धता नेट व सभी जिला मुख्यालयों में विद्यमान है। फलस्वरूप राज्य एवं जनपद स्तरीय जनसंख्या के संकलित द्वितीयक आंकड़ों पर आधारित जनसंख्या का अध्ययन करना सरल हो जाता है। इसी आधार पर राज्य के दशकवार आंकड़ों का अध्ययन करने पर स्पष्ट हुआ कि राज्य में 1901 से लेकर 2011 तक लिंगानुपात में परिवर्तन होता गया। इसी तरह राज्य के जनपदवार लिंगानुपात को देखने से भी इसमें परिवर्तन स्पष्टतया परिलक्षित होता है।

सारणी संख्या-01

राज्य में दशकवार लिंगानुपात

क्र.स.	दशक	लिंगानुपात
1	1901	831
2	1911	907
3	1921	916

4	1931	913
5	1941	907
6	1951	940
7	1961	947
8	1971	940
9	1981	936
10	1991	936
11	2001	962
12	2011	963

स्रोत – भारतीय जनगणना, 1991, 2001, 2011

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट होता है कि सन् 1911 और 1921 मे लिंगानुपात में वृद्धि हुई तथा सन् 1931 में (–3) तथा 1941 में (–6) जहां लिंगानुपात मे कमी दर्ज की गयी वही 1951 और 1961 में फिर वृद्धि दर्ज की गयी उसके पश्चात् दोनों दशकों में कमी ही दर्ज की गयी तथा 1981 और 1991 के दशकों में लिंगानुपात समान रहा। सन् 2001 (962) की तुलना में 2011 में (963) +1 की वृद्धि हुई। इससे स्पष्ट होता है कि पिछले दशकों से ही लिंगानुपात में उतार–चढ़ाव की स्थिति आती रही है। इसके कई कारण है जिनमें शिक्षा, स्वास्थ्य आदि कारण प्रमुख हैं।

सारणी संख्या–02

राज्य में जनपदवार लिंगानुपात

क्र.स.	जनपद	सन् 2001	सन् 2011
1	चमोली	1017	1021
2	रूद्रप्रयाग	1117	1120
3	टिहरी	1051	1078
4	पौड़ी	1104	1103
5	पिथौरागढ़	1031	1021
6	बागेश्वर	1110	1093
7	अल्मोड़ा	1147	1142
8	चम्पावत	1024	981
9	उत्तरकाशी	941	959

10	देहरादून	893	902
11	हरिद्वार	868	879
12	उधमसिंहनगर	902	919
13	नैनीताल	906	933
	राज्य	962	963

स्रोत –भारतीय जनगणना, 2001, 2011

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट होता है कि राज्य के (2001 के आंकड़ों के अनुसार) 5 जिले लिंगानुपात में राष्ट्रीय औसत (943) से कम हैं। शेष 8 जिलों में लिंगानुपात राष्ट्रीय औसत से अधिक है। सन् 2011 के आंकड़ों के अनुसार मात्र 4 जिले राष्ट्रीय औसत से कम हैं। शेष 9 जिलों का लिंगानुपात राष्ट्रीय औसत से अधिक है। इससे स्पष्ट होता है कि लिंगानुपात में वृद्धि हुई है। राज्य के दोनों दशकों के आंकड़ों का तुलनात्मक अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि 8 जिलों में लिंगानुपात में वृद्धि हुई है। जबकि शेष 5 जलों में लिंगानुपात में कमी दर्ज की गयी। राज्य के औसत लिंगानुपात सन् 2001 (962) की तुलना में सन् 2011 (963) के औसत लिंगानुपात में +1 की वृद्धि है। जहां उत्तराखण्ड में बाल लिंगानुपात में (2001 में 908 तथा 2011 में 886) अत्यधिक ह्रास देखा गया उसकी तुलना में सामान्य लिंगानुपात की स्थिति उत्तम है। इसका प्रमुख कारण लम्बे समय से महिला शिक्षा और साक्षरता में वृद्धि, सामाजिक और मानसिक चेतना, जीवन स्तर में परिवर्तन आदि है।

लिंगानुपात की दृष्टि से अल्मोड़ा जिला सर्वोपरि है तथा सबसे कम लिंगानुपात हरिद्वार जिले का है। लिंगानुपात में असन्तुलन के कई कारण हैं। वैसे राष्ट्र एवं राज्य में घटते लिंगानुपात अथवा लिंगानुपात असन्तुलन का कोई एक स्पष्ट कारण नहीं है फिर भी यह माना जाता है कि महिला शिशुओं के प्रति उपेक्षित व्यवहार (जो बाल लिंगानुपात ह्रास का एक महत्वपूर्ण कारण है), निम्न जन्म दर, महिलाओं की उपेक्षित व दयनीय स्थिति तथा अधिक संख्या में पुरुषों का प्रवास करना आदि महत्वपूर्ण कारण है।

लिंगानुपात को प्रभावित करने वाले कारक

लिंगानुपात को प्रभावित करने वाले प्रमुख 3 कारक है–जन्मदर अथवा जन्म के मृत्युदर, स्थानान्तरण/प्रवास मानवीय जनसंख्याओं की सार्वभौमिक विशेषताओं को समझने के लिए प्रजनन, मृत्युदर और प्रवसन की प्रक्रियाएँ आधारभूत है। इसके अतिरिक्त शिक्षा/साक्षरता आदि कारक प्रमुख हैं।

(1) शिक्षा/साक्षरता :-

शिक्षा सामाजिक और आर्थिक विकास का मूलभूत सूचक है। भारत एक विकासशील राष्ट्र है। इस विशाल भू-भाग वाले राष्ट्र में शिक्षा का प्रवाह धीरे-धीरे ही हुआ। स्वतंत्रता से पूर्व शिक्षा का स्तर निम्न होना स्वाभाविक था, किन्तु स्वतंत्रता के पश्चात् भी ना केवल उत्तराखण्ड राज्य अपितु सम्पूर्ण राष्ट्र में शिक्षा प्रचार-प्रसार धीरे-धीरे हुआ। उसमें भी महिला साक्षरता का प्रतिशत पुरुषों की तुलना में कम ही रहा। इसका प्रमुख कारण यह था कि महिलाओं को कृषि कार्यों, पशुपालन, तथा गृहस्थी के कार्यों तक ही सीमित रखा जाता था विशेषकर राष्ट्र और राज्य के ग्रामीण क्षेत्रों में, किन्तु आज महिला साक्षरता स्तर में परिवर्तन होता जा रहा है। प्रत्येक दशक में महिला साक्षरता के प्रतिशत में वृद्धि होती जा रही है। विगत कुछ वर्षों से प्राय: यह देखने में आ रहा है कि राज्य के अधिकांश उच्च शिक्षा संस्थानों में छात्राओं की संख्या छात्रों की अपेक्षा अधिक तथा व्यक्तिगत परीक्षाओं में भी महिलाओं की संख्या पुरुषों से अधिक रहती है। और इन सब का लिंगानुपात पर विशेष प्रभाव पड़ता है।

शिक्षा अथवा साक्षरता स्तर में वृद्धि होने का महत्वपूर्ण परिणाम यह होता है कि इससे व्यक्ति विशेष की मानसिकता बदलती है। लड़के-लड़कियों मे अन्तर की भावना कम होने लगती है और इसका स्पष्ट प्रभाव लिंगानुपात पर पड़ता है हालांकि राज्य में बाल-लिंगानुपात का घटता प्रतिशत इस वाक्य पर प्रश्नचिन्ह लगा देता है।

सारणी संख्या-03

राज्य के जनपदवार महिला साक्षरता वृद्धि (प्रतिशत में)

क्र.स.	जनपद	सन् 2001	सन् 2011
1	उत्तरकाशी	47.48	62.23
2	चमोली	63.00	73.20
3	रूद्रप्रयाग	59.98	70.94
4	टिहरी	49.76	61.77
5	देहरादून	71.22	79.61
6	पौड़ी	66.14	73.26
7	पिथौरागढ़	63.14	72.97
8	चम्पावत	54.75	68.81
9	अल्मोड़ा	61.43	70.44
10	बागेश्वर	57.45	69.59

11	नैनीताल	70.98	78.21
12	उधमसिंहनगर	54.16	65.73
13	हरिद्वार	52.60	65.96
	कुल	60.26	70.70

स्रोत–जनगणना, सन् 2001, 2011

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट होता है कि राज्य में सन् 2001 की तुलना मे 2011 में साक्षरता प्रतिशत में अतिशय वृद्धि हुई है। इसके प्रमुख कारण साक्षरता कार्यक्रमों में वृद्धि, महिलाओं में शिक्षा के प्रति जागरूकता तथा व्यक्ति विशेष की बदलती सामाजिक सोच आदि है। यह सत्य है कि राज्य में साक्षरता प्रचार प्रसार कार्यक्रमों के फलस्वरूप महिला साक्षरता प्रतिशत में अपेक्षा से अधिक वृद्धि हुई है। इसीलिए राज्य की महिलाओं में जागृति उभरी और आज महिलायें लगभग सभी क्षेत्रों में पहुंच गयी हैं। महिला साक्षरता प्रतिशत में हुई वृद्धि का प्रभाव लिंगानुपात पर स्पष्टतया पड़ता है एक शिक्षित महिला अथवा शिक्षित समाज छोटे परिवार के लाभों से अच्छी तरह परिचित होता है। इसलिए एक लड़की या दो लड़की होने के बाद वह महिला, लड़के अथवा पुत्र प्राप्ति की इन्तजार में परिवार को बढ़ाने की नहीं सोचती और उसकी इस सोच अथवा विचारधारा का स्पष्ट प्रभाव लिंगानुपात पर पड़ता है।

स्थानान्तरण/प्रवास :-

स्थानान्तरण से लिंगानुपात अत्यधिक प्रभावित होता है। आज उत्तराखण्ड राज्य के पर्वतीय जनपदों से मैदानी जनपदों में स्थानान्तरण के कारण लिंगानुपात में अत्यधिक असन्तुलन हो रहा है जिससे भविष्य में कई दुष्परिणाम सामने आ सकते हैं। स्थानान्तरण व्यक्ति कई कारणों से करता है जिसमें शिक्षा, रोजगार स्वास्थ्य और अब आपदा भी एक महत्वपूर्ण कारक बन चुका है। उत्तराखण्ड राज्य के पर्वतीय क्षेत्रों में आवश्यक आवश्यकताओं के अभाव में व्यक्ति मैदानी क्षेत्रों की ओर भागता जा रहा है। राज्य के दूरगामी क्षेत्रों से निकल कर व्यक्ति इन क्षेत्रों मे प्रवेश करते जा रहे हैं। यही कारण है कि राज्य के हरिद्वार, देहरादून, उधमसिंह नगर में जनसंख्या के प्रतिशत में वृद्धि हो रही है तथा रूद्रप्रयाग, चम्पावत, बागेश्वर आदि में जनसंख्या प्रतिशत कम होता जा रहा है। जिस कारण लिंगानुपात प्रभावित हो रहा है।

अन्य कारण :-

स्वास्थ्य एवं चिकित्सा सुविधायें, महिला साक्षरता में लगातार वृद्धि जीवन स्तर तथा सामाजिक स्तर में अत्यधिक परिवर्तन, रोजगार के क्षेत्र में महिलाओं का अच्छा

प्रतिशत, महिलाओं को प्रत्येक क्षेत्र में 33 प्रतिशत आरक्षण आदि कई कारण हैं जिससे लिंगानुपात प्रभावित हुआ है, अर्थात् लिंगानुपात में कम ही सही किन्तु वृद्धि (+1) दर्ज की गयी है। इसके अतिरिक्त युद्ध, अकाल तथा संक्रामक बीमारियां भी लिंगानुपात को प्रभावित करने वाले अन्य कारक है।

निष्कर्ष :-

किसी भी राष्ट्र अथवा राज्य के लिए लिंगानुपात में सन्तुलन होना अति आवश्यक है। इसमें असन्तुलन होने से जनसंख्या में असन्तुलन होने लगता है। उत्तराखण्ड राज्य के सामान्य लिंगानुपात में प्रत्येक दशक में परिवर्तन होता गया और सन् 2001 की तुलना में सन् 2001 में इसमें (+1) वृद्धि भी हुई किन्तु आगामी समय के लिए इसमें अधिक वृद्धि की आवश्यकता है, नहीं तो लिंगानुपात अत्यधिक असन्तुलित हो जायेगा। राज्य में साक्षरता कार्यक्रमों के फलस्वरूप महिला साक्षरता प्रतिशत में आशातीत वृद्धि हुई है जिसका प्रभाव लिंगानुपात पर भी पड़ा है। किन्तु बाल लिंगानुपात मे ह्रास एक सामाजिक चिंतन अथवा सोच का विषय है क्योंकि यह ह्रास मानव समाज में महिलाओं के प्रति नकारात्मक सोच का परिचायक है। सरकार द्वारा बनाये गये कड़े कानूनों के कारण आज लिंग जांच पर रोक तो लगा दी गयी हैं किन्तु इन कानूनों को और अधिक कड़ा करने की आवश्यकता है। साथ ही आम जन-मानस को जागरूक होना भी अति आवश्यक है।

सन्दर्भ सूची

1. फैंकलिन एस.एच., 1956, द पैटर्न ऑफ सेक्स रेशियो इन न्यूजीलैण्ड, इकोनोमिक ज्योग्राफी, वाल्यूम 32, पृ०-168
2. क्लार्क, जे.आई., 1965, पापुलेशन ज्योग्राफी, परगामो प्रेस, ऑक्सफोर्ड, पृ०-63
3. चौहान, वी०एस०, गौतम. अलका, भारत, रस्तोगी पब्लिकेशन्स, मेरठ, पृ०-365
4. हुसैन. माजिद, मानव भूगोल, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, नई दिल्ली, पृ०-94
5. भेतवाल. नीमा, देवली, बी.पी., रूहेलखण्ड भौगोलिक शोध पत्रिका, वाल्यूम 20, पृ०-131
6. भेतवाल. नीमा, देवली, बी.पी., रूहेलखण्ड भौगोलिक शोध पत्रिका, वाल्यूम 20, पृ०-131

✦✦✦

कामायनी महाकाव्य में नारी

–डॉ० सुभाष कुमार

असिस्टेन्ट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग, राजकीय महाविद्यालय जखोली,
रुद्रप्रयाग (उत्तराखण्ड)

संसार के प्रारम्भ से लेकर अब तक नारी पुरुष के जीवन को साकार करती आयी है। नारी ने पग-पग पर पुरूष के जीवन को सार्थकता प्रदान की है, नारी ने अपनी ममता, वात्सल्य, त्याग, करूणा, दया, माया, प्रेम, कोमलता एवं मधुरता से पुरुष की कठोरता को घटाकर उसके सूखे जीवन में प्रेम की, ममता की अजस्त्र धारा प्रवाहित करने का काम किया है।

नर-नारी का साथ आदि-अनादिकाल से चला आ रहा है। शास्त्रों में भी स्त्री को पुरुष की अर्धांगनी माना जाता रहा है। नारी और पुरुष एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, इसलिए नर है तो नारी है, साहित्य में नर के साथ-साथ नारी को भी स्थान प्रदान किया गया है। नारी-नर की शक्ति है, नारी के साथ के कारण ही नर शक्तिवान कहलाता है। नारी को हिन्दी साहित्य में अनेक रूपों में चित्रित किया गया है, परन्तु अगर हम जयशंकर प्रसाद जी की बात करते हैं तो उनके काव्य में नारी प्रेमिका के रूप में मुख्य रूप से उभरकर हमारे सामने आयी है उन्होंने नारी को प्रेमिका के रूप में नारी को अपने साहित्य में अमर बना दिया है। प्रस्तुत शोध पत्र में शोधार्थी का उददे्श्य जयशंकर प्रसाद जी के काव्य में नारी के प्रभावशाली स्वरूप की समीक्षा करना एवं उसके प्रभाव को देखना है। प्रस्तुत शोधपत्र को शोधार्थी ने पुस्तकों के अध्ययन, साहित्यकारों के विचारों के मनन पत्र, पत्रिकाओं के माध्यम एवं मौलिक प्रतिभा के माध्यम से पूर्ण करने का प्रयास किया है।

समाज में नारी को जो उचित स्थान मिलना चाहिए था वह नहीं मिला परन्तु आधुनिक काल में छायावादी युग के प्रवर्तक जयशंकर प्रसाद जी ने अपने काव्य में नारी को विभिन्न स्वरूपों में चित्रित किया है। छायावाद 1918 से 1936 ई० तक माना जाता है छायावाद के मुख्य रूप से चार स्तम्भ माने जाते हैं जयशंकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रा नन्दन पंत और महादेवी वर्मा इन सबने अपने काव्य में नारी

को प्रमुखता के साथ चित्रित, वर्णित करने का काम किया एवं नारी के प्रेम और सौन्दर्य का सूक्ष्म वर्णन किया। जयशंकर प्रसाद ने कामायनी में श्रद्धा के सौन्दर्य का वर्णन इस प्रकार से किया है-

नील परिधान बीच सुकुमार, खुल रहा मृदुल अधखुला अंग।
खिला हो ज्यों बिजली का फूल, मेघ बन बीच गुलाबी रंग।।[1]

प्रसाद जी ने श्रद्धा को नारी के रूप में सौन्दर्य की पराकाष्ठा तक पहुँचाने का काम किया है जयशंकर प्रसाद ने कामायनी महाकाव्य में ही श्रद्धा को महिमामण्डित करके चित्रित किया है। नारी को प्रसाद जी ने पुरूष के जीवन में अमृत धारा के समान मानकर उसको पुरूष के जीवन में प्रेम की धारा के समान मानकर उसका वर्णन किया है-

नारी तुम केवल श्रद्धा हो विश्वास रजत नभ पग तल में।।
पीयूष स्त्रोत सी बहा करो, जीवन के सुन्दर समतल में।।[2]

प्रसाद जी ने कामायनी में श्रद्धा को सभ्य और सुसंस्कृत स्त्री के रूप में प्रस्तुत करने का काम किया है। श्रृद्धा मनु को जीवन के सत्य से भी रूबरू कराती है जीवन को भोग न मानकर आशा का प्रेरणादायी मानकर कहती है कि-

तप नहीं केवल जीवन सत्य करुण यह क्षणिक दीन अवसाद
तरल आकांक्षा से हैं भरा सो रहा आशा का आल्हाद।।[3]

इसी प्रकार श्रृद्धा मनु को जीवन की पुरातनता को छोड़कर नवीनता ग्रहण करने की प्रेरणा प्रदान करती हुई कहती है कि-

पुरातनता का यह निर्भीक
सहन करती न प्रकृति एक पल
नित्य नूतनता का आनन्द
किए है परिवर्तन में टेक।।[4]

कामायनी में श्रृद्धा को प्रसाद जी ने त्यागी नारी के रूप में समर्पित करने का भी काम किया है। उन्होंने श्रृद्धा को मनु के जीवन रूपी मार्ग में आत्मसमर्पण करते

---

1. कामायनी, जयशंकर प्रसाद, डामंड पाकेट बुक्स प्रकाशन, 2006, पृष्ठ-43
2. वही-पृष्ठ-44
3. वही-पृष्ठ-72
4. वही-पृष्ठ-72

हुए भी प्रस्तुत किया है-

समर्पण लो सेवा का सार
सजल संस्कृति का यह यपलवार
आज से यह जीवन उत्सर्ग
इसी पदतल में विगत विकार।।[1]

प्रसाद जी ने कामायनी में ही श्रृद्धा के रूप श्रृंगार का वर्णन भी एक कुशल सौन्दर्य के चितेरे के रूप में किया है उसकी श्रृद्धा के रूप और सौन्दर्य की प्रशंसा उन्मुक्त कंठ से की है-

आह! वह मुख पश्चिम के व्योम
बीच जब घिरते हो घनश्याम।
अरू रवि मंडल उनको भेद
दिखाई देता हो छविधाम।।

या कि नव-इन्द्रनील लघु श्रंग
फोड़कर धधक रही को कान्ति।।[2]

श्रद्धा को प्रसाद जी ने कामायनी में मानवता का संदेश देने वाली आदर्श नारी के रूप में चित्रित किया है। भयानक जल विनाश के कारण शोकग्रस्त मनु को श्रृद्धा निराशा के अवसाद से निकालकर मानवता का आशा रूपी सन्देश देती है। इतना ही नहीं अपितु मनु के चरणों में अपना सम्पूर्ण जीवन भी प्रसन्नता के साथ समर्पित कर देती है-

''दया, माया, ममता लो आज
मधुरिमा लो अगाध विश्वास,
हमारा हृदय रत्न-निधि स्वच्छ
तुम्हारे लिए खुला है पास।।

और क्या यह तुम सुनते नहीं
विधाता का मंगल वरदान
शक्तिशाली हो विजयी बनों
विश्व में गूँज रहा जयगान''।।[3]

1. वही-पृष्ठ-73
2. वही-पृष्ठ-48
3. वही-पृष्ठ-51

एक सच्ची, सरल एवं सहृदय प्रेमिका के रूप में भी प्रसाद जी ने कामायनी में श्रृद्धा को चित्रित किया है। प्रसाद जी ने श्रद्धा में प्रेमिका के रूप में लज्जा, प्रेम, करूणा, प्रेम सभी सदगुणों का समावेश किया है-

''औरों को हँसते देखो मनु
हँसो और सुख पाओं।
अपने सुख को विस्तृत कर लो
सबको सुखी बनाओं॥''[1]

स्त्री को एक चित्र की भाँति समझने वाले प्रसाद जी ने उसमें अनेक प्रकार के रंगों को भरने का कार्य किया है। उन्होंने नारी को इन शब्दों में व्याख्यायित करने का काम किया है-

''नारी जीवन का चित्र यही क्या?
विकल रंग भर देती हो,
अस्फुट रेखा की सीमा में
आकार कला को देती हो।''[2]

इसी प्रकार से प्रसाद जी ने कामायनी में श्रृद्धा को सुमन बिखेरने वाली और महामानवी के रूप में वर्णित किया है कि-

''श्रद्धा ने सुमन बिखेरा
शत-शत मधुपों का गुंजन,
भर उठा मनोहर नभ में,
मनु तन्मय बैठे उन्मन।''[3]

प्रसाद जी ने श्रृद्धा के लोक कल्याणकारी स्वरूप को प्रमुखता के साथ उभारने का काम किया है। इसी कारण मनु भी श्रृद्धा से प्रभावित होकर कहते है कि-

''हम अन्यन और कुटुम्बी
हम केवल एक हमीं है।
तुम सब मेरे अवयव हो
जिनमें कुछ नहीं कमी है।''[4]

---

1. वही-पृष्ठ-196
2. वही-पृष्ठ-172
3. वही-पृष्ठ-184
4. वही-पृष्ठ-241

उपरोक्त अध्ययन, मनन, विश्लेषण के पश्चात कहा जा सकता है कि प्रसाद जी ने कामायनी में श्रृद्धा के रूप में एक आदर्श भारतीय नारी की प्रतिमूर्ति मानकर भारतीय नारी को साहित्य में प्रतिष्ठित करने का महान एवं सफल कार्य किया है एवं भारतीय साहित्य में नारी को उद्दात्त एवं महान रूप में कामायनी में श्रद्धा को चित्रित किया है वैसा अन्यत्र नहीं मिलता है। इस प्रकार हम कह सकते है कि कामायनी में प्रसाद जी ने नारी का उत्कृष्ट वर्णन एवं चित्रण किया है।

✦✦✦

आचार्य कवि देव काव्य में कला-लालित्य का अनुशीलन

डॉ० विमला चमोला

अंशकालिक प्रवक्ता (हिन्दी विभाग)

हे०न०ब०के०ग० विश्वविद्यालय

वी०जी०आर० कैम्पस (पौड़ी) श्रीनगर गढ़वाल

कला मानव की चिरसंगिनि अर्थात् उसकी जीवनसंगिनि है। भारत के विकास में ही कला का विकास हुआ है। मानव और कला का सम्बन्ध शाश्वत और अविभाज्य है। मानव ने कला को प्रतिष्ठित किया है और कला ने मानव को आत्मचेतना और आत्मगौरव प्रदान किया है। कला ही मानव जीवन का सौन्दर्य और माधुर्य से पूर्ण करती है। इस प्रकार कला का उद्‌गम सौन्दर्य की मूलभूत प्रेरणा से हुआ है।

कला एक व्यापक शब्द है जिसे किन्हीं निर्धारित शब्दों में नहीं बांधा जा सकता है। आरम्भ से ही कला की अवधारणा को स्पष्ट करने का प्रयास किया जाता रहा है। कला शब्द की व्युत्पत्ति कल् धातु से व्युत्पन्न मानकर इसका अर्थ 'गणना करना' अथवा 'रचना करना' माना गया है जो आधुनिक सौन्दर्यबोधक अर्थ से भिन्न है। आज कला शब्द हमारे बौद्धिक और सांस्कृतिक जीवन में सर्वत्र व्याप्त है। कला और मानव का सम्बन्ध हमेशा रहने वाला और अटूट है अर्थात् जिसे विभक्त नहीं किया जा सकता। मानव द्वारा कला का जन्म हुआ है और कला के द्वारा ही मानव में भाव, ज्ञान, रूचि, इच्छा, प्रेरणा आदि का जन्म हुआ है। कला ही मनुष्य को सौन्दर्य से पूर्ण करती है। सौन्दर्य के प्रति मानव का विशिष्ट आग्रह होता है, इसका प्रमाण है अनुकरण करने की प्रवृत्ति। प्रकृति से प्राप्त पदार्थ के सौन्दर्यों को देखकर मानव का मन प्रसन्नता और आनन्द का अनुभव करता है। और अपनी अनुकरण प्रवृत्ति के कारण स्वयं भी इस सौन्दर्य का अंकन करना चाहता है। जिस क्षण इस भावना की अभिव्यक्ति हुई, वही क्षण कला के जन्म का क्षण है। किन्तु सम्भवत: कला शब्द का प्रयोग बहुत बाद में हुआ होगा।

भारतीय साहित्य में कला के विषय में पुरातन काल से ही विभिन्न दृष्टिकोण प्राप्त होता है। प्राचीन भारतीय साहित्य में कला के प्रति आध्यात्मिक दृष्टिकोण पाया जाता था। महर्षि वात्सायन ने चौंसठ मूल कलाओं तथा पांच सौ अठारह अंत:कलाओं की व्यवस्थित सूची दी है। परन्तु यह मान्यता शैव दर्शन के अनुकूल है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार-"भारतीय साहित्य में कला को 'महामाया का चिन्मय विलास' कहा गया है।"[1] साहित्य में शनै:-शनै: कला की आध्यात्मिकता का लोप होता गया और कला के साथ काम का समावेश हो गया। कला कार्य विशेष कुशलता के अर्थ में प्रयुक्त होने लगी। कला शब्द को सर्वप्रथम प्रयोग ऋग्वेद में मिलता है-"यथा कलां यथाशप्पं ऋणं संयामिसि"[2] प्राचीन साहित्य में कला शब्द का उल्लेख व्यापक रूप से होता है किन्तु विशिष्टता यह है कि काव्य को कला से भिन्न माना गया है तथापि कला की महत्ता को सर्वत्र स्वीकार किया गया है। भर्तृहरी ने नीतिशतकम् में कला का विवेचन करते हुए यह माना है कि यह वह संस्कृति है जहां कला विहीन व्यक्ति को साक्षात् पशु की संज्ञा दी गई है-

साहित्य संगीत कला विहीनः
साक्षात् पशु पुच्छ विषाण हीनः॥[3]

संस्कृताचार्यों में भामह कला को धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष की प्राप्ति का साधन मानते हैं।[4] भरत मुनि कला को केवल साहित्य से ही भिन्न हीं मानते बल्कि उनकी दृष्टि में वह ज्ञान शिल्प और विद्या से भी भिन्न वस्तु है।[5] उन्होंने काव्य को कला से स्वतंत्र माना है क्योंकि काव्य से कलाओं में अन्तर प्राप्त होता है अत: काव्य स्वयं कला नहीं है। आचार्य दण्डी के मतानुसार नृत्य, गीत, कला और अर्थ के आश्रित है इस प्रकार उन्होंने कला से साहित्य का स्पष्ट भेद स्वीकार किया है। उनकी दृष्टि में कला काम में सहायक होती है।[6] काम शास्त्र के ग्रंथों में वात्स्यायन का कामसूत्र बहुत प्रसिद्ध है। इसकी रचना 312 ई०पू० में हुई थी। इस ग्रन्थ में 64 कलाओं का उल्लेख है। इसी आधार पर भारत में चौंसठ कलाओं को मान्यता दी गई है।

---

1. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, प्राचीन भारत के व्यंग्यात्मक विनोद, पृ०सं०-9
2. ऋग्वेद, 2/3/36
3. भर्तृहरी, नीतिशतकम्, 15/2
4. धर्मार्थ, काम, मोक्षाणां वंचक्षण्यं कला-सुच
   प्रीतिम् करौति कीति च साधुकाव्य-निबन्धनम्। भामह काव्यालंकार, पृ०सं०-67
5. न तत् ज्ञानं न तच्छि शिल्पं न सा विद्या नसा कला-भरतमुनि नाट्यशास्त्र, पृ०सं०-49
6. नृत्य गीत प्रभृतय: कला कामार्थ संश्रया-आचार्य दण्डी, काव्यादर्श, पृ०सं०-67

शैवदर्शन में कला आध्यात्मक परक थी किन्तु कालांतर में यह कर्म कौशल का प्रतीक हो गई है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि कला से तात्पर्य कुलीन वर्ग के मनोरंजन के साधन जैसे संगीत आदि है और शिल्प से तात्पर्य ऐसे कर्म कौशल से है जिसे व्यवसायिक कार्यों के लिए प्रयुक्त किया जाता है और इसका संबंध समाज के निम्नतम वर्ग से है।[1]

पाश्चात्य साहित्य में भी कला का पर्याप्त मात्रा में विवेचन हुआ है। अठारवीं सदी में ग्रीक और लैटिन में कला के जो मूल शब्द हैं वे वास्तव में कारीगरी के ही पर्यायवाची हैं। फ्रांस और जर्मनी में भी इन दिनों कला का तात्पर्य कौशल ही था। अरस्तु ने कला की प्रकृति को अनुकृति माना है।[2] हीगल सौन्दर्य और कला को एक ही मानते हुए काव्य को सर्वोत्कृष्ट कला मानते हैं। उनके अनुसार मानव मन की सूक्ष्म से सूक्ष्म और गहनतम भाव वीथियों के प्रकाशन के कारण ही काव्यकला सर्वश्रेष्ठ है। दूसरे शब्दों में काव्य की कला प्रकाशन का सर्वाधिक सूक्ष्म तथा समर्थ साधन है। अभिव्यंजनावादी क्रोचे ने मूर्त तथ अमूर्त अभिव्यंजना को ही कला माना है और इसी अभिव्यंजना को ही सौन्दर्य माना है। ब्रेडले ने कला को कला ही मानकर कला की सूक्ष्म एवं मार्मिक विवेचना करते हुए 'कला कला के लिए' सिद्धांत की प्रतिस्थापना की।[3] टॉल्स्टाय के अनुसार कला मनुष्य की सर्वप्रथम स्वानुभूत भाव को जागृत कर उसे गति रेखा ध्वनि या शब्द के माध्यम से मूर्तरूप प्रदान कर उसे दूसरों के लिए बोधगम्य बनाता है।[4] पाश्चात्य विचारकों ने काव्य को कला के अन्तर्गत माना है। वस्तुतः काव्य कला ही नहीं विद्या भी है। भावात्मक सौन्दर्य के साथ-साथ कलात्मक सौन्दर्य भी किसी कृत्ति को उत्कृष्ट और कालजयी रचना बनाता है क्योंकि काव्य ही कला ही सत्य और सौन्दर्य को उसकी व्यापकता एवं समग्रता में रूपायित करती है जिसमें कलाकार की मौलिक और रचनात्मक प्रतिभा विद्यमान होती है।

फ्रॉयड ने मानव के अवचेतन मन की प्रवृत्तियों को उन्मत रूप को कला कहा है। फ्रॉयड ने घोषणा की है कि सभी कलाएँ, जाने-अनजाने गुण प्रकट काम की ही अभिव्यक्तियां हैं और वे विकृत हैं क्योंकि इसके जीवन की ऊर्जा की सहज, स्वाभाविक स्वास्थ्य शमन नहीं होता। इनमें काम के आगे और काम के पीछे की ओर खिसक जाने की ग्रन्थ रहती है जीवन की जय नही, वरन् पराजय का स्पर्श रहता है।

---

1. महर्षि वात्स्यायन, कामसूत्र, प्रथम-भाग, पृ०सं०-87-88
2. अरस्तु पोएटिक्स, पृ०सं०-37
3. ए०सी० बेडले, ऑक्स्फोर्ड लेक्चरस ऑन पाएट्री, पृ०सं०-5
4. टॉलस्टाय कला क्या है, पृ०सं०-38

कला की अनुभूति मन की विकृति है। स्वप्नों या दिवास्वप्नों में खो जाने जैसी जीवन से बजार पलायन न कि जीवन जीने के लिए संकल्प और संघर्ष की द्योतक।[1]

आधनिक हिन्दी साहित्य में भी कला का बहुतायत में विवेचन किया गया है। आलोचक आचार्य रामचन्द्र गुणचन्द्र शुक्ल जी ने कला को काव्य में सर्वथा भिन्न एवं स्वतंत्र मानते हुए कला को परिष्कृत तत्त्व की संज्ञा दी है। उनके अनुसार काव्य के स्वरूप की भावना धीरे-धीरे बेलकूटे और नवकाशी की भावना के रूप में आती है। हमारे यहां काव्य की गिनती चौंसठ कलाओं में नहीं की गई। कामनीयकार जयशंकर प्रसाद ने भी कविता की विद्या और कला को उपविद्या माना हैं।[2] डॉ० हरद्वारी लाल शर्मा ने कला को इन शब्दों में परिभाषित किया है किसी भी कृति (करना), भणिति (कथन या कहना), पठन, निर्माण, रचना अथवा अभिव्यक्ति को हम कला कह सकते हैं जिसके विन्यास या ताने माने में रूप का अनुभव हो।[3] डॉ० विश्वनाथ प्रसाद के अनुसार कला सौन्दर्य की अभिव्यंजना है।[4] उपर्युक्त दोनों परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि कला सौन्दर्य को प्रकट करने का एक साधन है। रूप जितना ही प्रखर, स्पष्ट एवं प्रभावी होता है कला भी उतनी ही महान हो जाती है। निराला जी ने कला को निष्कलुष माना है।

महादेवी वर्मा के अनुसार कला शब्द से किसी निर्मित पूर्व खण्ड का ही बोध होता है। इस प्रकार किसी कलाकृति के लिए निर्माण सम्बन्धी विज्ञान को ही आवश्यकता होती और इस विज्ञान की सीमित रेखाओं में व्यक्त होने वाली जीवन के व्यापक सत्य की अनुभूति थी।[5] मैथिलीशरण गुप्त के अनुसार प्रकृति की न्यूनता और अपूर्णता को कला पूर्ण करती है।[6] डॉ० नगेन्द्र कला की अन्तः और बाह्य दोनों ही अभिव्यक्तियों को महत्वपूर्ण मानते हुए कहा है- वास्तविक अर्थ में तो किसी कवि की कला उसकी सम्पूर्ण अभिव्यक्ति आत्मा की अभिव्यक्ति होती है। विभिन्न अनुभूतियों मे निर्मित रंग, रेखा शब्द कला है।[7]

इसलिए भारतीय मत कला को काव्य से अभिन्न मानता है। जबकि पाश्चात्य मत कला और काव्य को अलग-अलग स्वीकारता है। वस्तुतः कला एक गुण है जो

---

1. डॉ० हारद्वारी लाल शर्मा, कलादर्शन, पृ०सं०-120
2. जयशंकर प्रसाद, काव्य कला और अन्यनिबन्ध, पृ०सं०-38
3. डॉ० हारद्वारी लाल शर्मा, कलादर्शन, पृ०सं०-4
4. डॉ० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, कला एवं साहित्य, प्रवृत्ति और परंपरा, पृ०सं०-2
5. मैथिलीशरण गुप्त, साकेत, प्रथम सर्ग, पृ०सं०-27
6. डॉ० श्यामसुन्दन दास, साहित्यलोचन, पृ०सं०-9
7. डॉ० नगेन्द्र, देव और उनकी कविता, पृ०सं०-181

काव्य आदि सभी में विद्यमान रहती है। सृजन में कला निहित है। अतएव सभ्यता ने तो कुछ (सड़क, पुलिया, भवन आदि) बनाया, उसमें कला अपने रूप विधान के साथ आ गयी। अत: जहां भी सम्पूर्ण सज्जा एवं शृंगार रस और रंग शैली और शहर जीवन की सज-धज व्यवस्था अथवा रूप है, वहां कला है। अभिव्यक्ति के सम्पूर्ण रूपो में कला के विधान कहीं न कहीं प्रकट हो जाते हैं। इस प्रकार कला की व्याप्ति सभी प्रकार की अभिव्यंजनाओं में होती है।

✦✦✦

छायावाद काव्य में नारी वर्णन

संध्या गैरोला

अतिथि प्रवक्ता (हिन्दी विभाग)

राजकीय स्नात्तकोत्तर महाविद्यालय गोपेश्वर (चमोली)

छायावाद का विकास द्विवेदीयुगीन कविता के उपरान्त हिन्दी साहित्य में हुआ। छायावादी काव्य की समय सीमा 1918 ई० –1936 तक मानी जा सकती है। **आ० रामचन्द्र शुक्ल** ने भी छायावाद का प्रारम्भ 1918 ई० से माना है। क्योंकि छायावाद के प्रमुख कवियों, पन्त, प्रसाद, निराला ने अपनी रचनाएँ लगभग इसी वर्ष के आस–पास लिखनी प्रारम्भ की थीं।[1]

प्रकृति की भाँति ही छायावादी कविता में नारी की भी प्रधानता दिखाई पड़ती हैं। छायावाद के पूर्ववर्ती काव्य में नारी संबधी रचनाएँ न हो –ऐसा तो नहीं हैं किंन्तु वे रचनाएँ पुरूष–प्रधानता की ही द्योतक है। द्विवेदी युग की कविता में नारी के प्रति दया का भाव तो है। पर यथोचित सम्मान का भाव नहीं है।[2]

छायावादी कवियों ने नारी के प्रति उदान्त दृष्टिकोण अपनाकर समान में उसके सम्माननीय स्थान को प्रतिष्ठित किया। रीतिकालीन कवियों ने नारी को विलास की वस्तु और उपभोग की सामग्री मात्र माना जबकि छायावादी कवियों ने उसे प्रेरणा का पावन उत्सव मानते हुए गरिमा प्रदान की द्विवेदी युग में नि:सन्देह विधवाओं को लेकर अनेक कविताएँ लिखी गई। किंतु द्विवेदी युग मे नारी को आश्रय देने के साथ ही बंदिनी भी बना दिया गया।

कविता में नारी–संबंधी दृष्टिकोण में यह जो परिवर्तन हुआ यह आकस्मिक नहीं है। उन्नीसवीं सदी में जो सुधार आंदोलन आरंभ हुआ था। वह बीसवीं सदी का प्रथम पाद समाप्त होते–2 बहुत जोर पकड़ गया। नारी शिक्षा में बड़ी तेजी से प्रगति हुई। सरकारी आंकड़ों के अनुसार 1900 मे शिक्षा ग्रहण करने वाली लड़कियों की संख्या जहाँ लगभग चार लाख थी। वहाँ 1925 में यह संख्या उनकी तिगुनी अर्थात् बारह लाख तीस हजार छ: सौ अट्ठानवे हो गयी और 1935 तक जाते–2 सात गुना

---

1. छायावाद– नामवर सिंह– पृ०सं०–47,49,212
2. कामायनी– जयशंकर प्रसाद – पृ०सं०– 23,46

से भी ज्यादा हो गई इन तमान बातों का असर कविता पर भी पड़ा नारी के प्रति जो दया का भाव था, यह बदल गया इस युग में नारी ने पुरूष की दया के स्थान पर अपने अधिकारों की माँग की। इस अधिकार भावना ने नारी पुरुष के बीच कहीं समानता का भाव पैदा किया।[1]

छायावाद के प्रथम स्तम्भ कहे जाने वाले जयशंकर प्रसाद जी ने कामायनी महाकाव्य में नारी का अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया है। कामायनी में प्रसाद जी ने श्रद्धा के रूप में नारी को चित्रित करते हुए एक पुरुष (मनु) के जीवन में नया जीवन देने वाली नारी के रूप में दर्शाया है–

सुना यह मनु ने मधु गुंजार मुधुकरी का सा जब आनंद,
किये मुख नीचा कमल समान प्रथम कवि का ज्यों छंद।

कामायनी महाकाव्य में प्रसाद जी ने श्रद्धा को नारी के रूप में चित्रित करते हुए उसे दया, क्षमा करूणा और प्रेम की देवी कहते हुए उसे कुछ इस तरह दर्शाया है

नारी तुम केवल श्रद्धा हो,
विश्वास रजतनग पगतल में।
पीयूष स्त्रोत सी बहा करो,
जीवन के सुन्दर समतल में।[2]

नारी वर्णन मे छायावादी कवियों की विशेष रुचि थी। छयावादी कवियों ने नारी के सौन्दर्य का वर्णन भी किया है कामायनी में प्रसाद जी ने श्रद्धा के शारीरिक अंगों की कान्ति का वर्णन बड़े आकर्षक ढंग से किया है–

नील परिधान बीच सुकुमार,
खुल रहा मृदुल अधखुला अंग।
खिला हो ज्यों बिजली का फूल,
मेघ बन बीच गुलाबी रंग।

सौदर्य परमात्मा के द्वारा मानव को प्रदत सात्विक वरदान है। **प्रसाद के अनुसार**– "उज्ज्वल वरदान चेतना का सौन्दर्य जिसे सब कहते है" सौन्दर्य की अभिव्यक्ति सांकेतिक शैली में उन्होने की है। श्रद्धा के सौन्दर्य को उन्होने फूलो के पराग, सुगन्ध एवं मकरन्द से युक्त बताते हुए चित्रित किया है–

---

1. स्वच्छन्दावाद एवं छायावाद का तुलनात्मक अध्ययन– डा० शिवकरण सिंह–पृ०सं० 91,131
2. छायावादी काव्य में सौन्दर्य चेतना– डॉ कृष्णमुरारी मिश्र पृ०सं०– 37

कुसुम कानन अंचल में मन्द पवन प्ररित सौरभ साकार,
रचित परमाणु पराग शरीर खड़ा हो ले मधु का आकार।[1]

छायावाद में नारी को देवी, सहचरि, प्राण की संज्ञा मिली हैं जहाँ नारी का तरूणी रूप में भी चित्रण हुआ है। वहाँ सलज्ज तरुणी का ही चित्र सामने आता है। प्रेयसी रूप में भी इसमें अधिक सफलतापूर्णक चित्रित है प्रसाद जी के हृदय में नारी का ऊँचा स्थान है इस पंक्तियों से पन्त जी के विचारों को जाना जो सकता है-

तुम देवि! आह कितनी उदार,
वह मातृ मूर्ति हे निर्विकार।
हे सर्वमंगले! तुम महती,
सबका दु:ख अपने पर सहती।

छायावादी कवि इस इस बात को जानता है कि नारी महिमामयी शक्तिमयी एवं सृष्टि की अधिष्ठात्री है, यह केवल कोरी काल्पनिक भावना नहीं अपितु इसका एक दृढ आधार है छायावादी कवि तो स्वीकार करता है। देखिए-

'तुम्हारी सेवा में अनजान,
हृदय है मेरा अन्तर्ध्यान,
देवी माँ सहचरि प्राण'।[2]

बाल वैधव्य के आधार पर विधवा को पवित्र मानने की यह भावना द्विवेदी युग में ही न थी, बल्कि उसकी प्रभाव छायावाद के आरंभिक दिनों तक था महाप्राण सूर्यकांत त्रिपाठी निराला की प्राय: उद्धृत की जानेवाली कविता विधवा कुछ प्रकार है-

वह इष्टदेव के मन्दिर की पूजा सी
वह दीप-शिखा-सी शान्त भाव में लीन,
वह क्रूर काल ताण्डव की स्मृति रेखा सी
वह दूटे तरु की छुटी लतस यी दीन
दलित भारत की ही विधवा है।

पति के साथ कुछ वर्ष बिताकर विधवा होनेवाली नारी को ''इष्टदेव के मंदिर की पूजा सी पवित्र कहने का साहस उस समय स्वंय निराला को भी न था। इसे उस युग के नारी संबधी दृष्टिकोण का ही प्रभाव समझना चाहिए इसके फलस्वरूप पहली बार छायावादी कविता में नारी को प्रेयसी का ऊँचा आसन प्राप्त हुआ।[3]

---

1. निराला का काव्य - डा० जगदीशप्रसाद श्रीवास्तव पृ०सं० 132
2. अनामिका - सूर्यकांत त्रिपाठी निराला- पृ०सं० 66,110
3. परिमल -सूर्यकांत त्रिपाठी निराला पृ०सं० 98

निराला जी ने नारी में दिव्य और अतीन्द्रिय सौन्दर्य के दर्शन किए है, तुलसीदास की रत्नावली में नारी का अत्यन्त तेजस्वी और प्रोज्ज्वल रूप प्रकट हुआ है–

देखा, शारदा नील वसना
है, सम्मुख स्वयं सृष्टि रचना
जीवन-समीर शुचि निःश्वसना वरदात्री

छायावादी युग में नारी के आदर्श रूप अथवा शील का चित्रण प्रभूत परिणाम में हुआ है। नारी के प्रति शील के मुख्य आधार–दया, ममता, करुणा सेवा सहानूभूति, समर्पण, त्याग आदि दिव्य गुण है।

छायावादी कवि ने नारी की पुनः सृष्टि की उसने विधाता की सृष्टि को अपनी कल्पना के योग से नवीन रूप दे डाला। इस तरह छायावादी कवि की नारी विधाता की सृष्टि से कहीं अधिक कवि की सृष्टि है।

छायावादी कवियों में नारी को महत्वपूर्ण और सम्मान पर पर प्रतिष्ठित करने वाले कवियों में पन्त जी का विशिष्ट स्थान है। उन्होंने नारी की प्रशंसा अधिकांशतः देवि, माँ सहचरी के रूप में की है।

पंत ने नारी के शील सौजन्य का सुन्दर चित्रण किया है ग्रन्थि की नायिका तो उदारता की देवी ही है। उसने नायक की प्राण रक्षा की है। नायक उसकी उदारता की प्रशंसा करते हुए कहता है–

दयानिल से विपुल हो सहज।
सजल उपकृति का सजल मानस प्रिये।
क्षीण करूणालोक का भी लोक को है।
वृहत प्रतिबिम्ब दिखलाता सदा।

पंत जी ने नारी के शील का मुक्तकंठ से गुणगान किया है। उनका विचार है–

यह स्वर्ग कहीं है पृथ्वी पर, तो नारी उर के भीतर
दल पर दल खोल हृदय के स्तर
जब बिठलाती प्रसन्न होकर
वह अमर प्रणय के शतदल पर

छायावादी काव्य में नारी सौंदर्य का चित्रण आदर्शवादी हुआ इस सौन्दर्य के संपर्क ''जो लहिए संग सुनन हू साहस नही हो सकता इसीलिए पंत कहते है–

तुम्हारे छूने में था प्राण
संग में पावन गंगा स्नान

प्रसाद के प्रेम पथिक की पुतली अथवा चमेली अनचाहे पति की क्रीत दासी होकर किसी तरह जीवन व्यतीत करती रही, किंतु पति के मर जाने पर उसने तमाम बन्धनों को तोड़कर प्रेम की पर्णकुटी बसा ली और वहीं उसे पूर्व प्रेमी केा साहचर्य प्राप्त हुआ। जिस समय प्रसाद ने प्रेम पधिक (1913) लिखा उस समय यह संभव भी न था कि कोई नारी अपने वैवाहिक जीवन से असंतुष्ट होकर विवाह बंधन तोडने की कल्पना कर सके। अपने बाल-सखा को पति के रूप में प्राप्त करने की ललक चमेली के मन में कितनी थी, यह उसके इन शब्दों से ही मालूम होता है-

पुतल ब्याही जावेगी, जिस से वह परिचित कभी नहीं
यही ध्यान था उठता मन में-हाय प्राणप्रिय! क्या होगा?

नारी के प्रति निराला की दृष्टि ऐकान्तिक अथवा व्यक्तिगत कम रही है। निराला जी ने नारी को संघर्ष करते हुए तोड़ती पत्थर नामक कविता में कुछ इन शब्दों में चित्रित किया है-

कोई न छायादार
पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार
श्याम तन, भर बँधा यौवन
नत नयन, प्रिय-कर्म-रत मन
गुरू हथौड़ा
हाथ बार-2 प्रहार।

निराला जी नारी को जीवन की विविध भूमियों में ही रूपायित करते रहे हैं उनकी एकाधिक रचनाओं में प्रिया के प्रति, रोज स्मृति आदि में वैयक्तिक संदर्भ मिलेगें ऐसे स्थूल अपेक्षाकृत कम हैं दिवंगत पत्नी के रुपांकन का एक अत्यन्त नाजुक जोर मार्मिक प्रसंग सरोज स्मृति में आता हैं जब अपनी पुत्री सरोज को वेवाहिक वेशभूषा में देखकर कवि के मन:पटल पर स्वर्गीय प्रिय की प्रथम छवि कौध जाती है और कवि उसे ढांक लेते है। और चंद आँसुओं के साथ उसे काव्य भूमि से विसर्जित कर देता है। यह संयम निराला जैसा लौह पुरूष कवि ही दिखा सकते है।

निराला जी ने नारी को निराश पुरूष के हृदय में आशा का संचार करने वाली शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित किया राम की शक्तिपूजा में राम के निराश हृदय में सीता की स्मृति मात्र से आशा का संचार होते दिखाया गया है:-

ऐसे क्षण अन्धकार घन मे जैसे विद्युत
जगी पृथ्वी तनया कुमारिका छवि अच्युत
छेखते हुए निष्पलक, याद आया उपवन,
विदेह का प्रथम स्नेह का लवान्तराल मिलन।।

निष्कर्ष– छायावादी काव्य में नारी वर्णन का अवलोकन करने से यह ज्ञात होता है। कि छायावादी कविता में प्रकृति की भाँति नारी की भी प्रधानता दिखाई पड़ती है। छायावादी काव्य में नारी को ऊँचा स्थान प्राप्त है। तथा छायावाद में नारी को देवि, सहचरी, प्रेयसी, माँ तथा संघर्ष करने वाली रूप में चित्रित किया गया है। 'प्रेयसि' 'प्रिये' 'प्रियतम' और सखि जैसे संबोधन जिस मात्रा में छायावादी कविता में व्यक्त हुए है, पहले शायद ही किए गए हो। 'सखी' और सजनी जैसे शब्दों की बहुलता को देखकर कुछ लोगों ने विनोद में छायावाद को सजनी-संप्रदाय नाम दे दिया, जैसे यह मध्ययुगीन सखी संप्रदाय का पुनरुत्थान ही हो।

✦✦✦

आधुनिक समाज के लिए कम्प्यूटर की अनिवार्यता

डॉ० शशि बाला रावत/पंवार

हिन्दी-विभाग (प्रवक्ता)

राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय

अगस्त्यमुनि जिला (रुद्रप्रयाग)

आज कम्प्यूटर का युग है। दुनिया के कोने-कोने में फैले करीब पाँच करोड़ कम्प्यूटर आपस में बातें करने लगे हैं। उनके आड़े न तो देश की सरहद आती है और न सरकार कम्प्यूटरों पर सूचनाओं का बेरोकटोक आदान-प्रदान जारी है। देशों की सीमाएँ तोडने का श्रेय सूचना तकनीकि के नए माध्यम 'इंटरनेट' को जाता है। इंटरनेट पैदा तो अमेरिका में हुआ है लेकिन अब यह पूरी दुनिया में फैल चुका है, इसकी शुरुआत शीतयुद्ध के दिनों में अमेरिका रक्षा विभाग पेंटागन में हुई थी। पेंटागन एक ऐसे नेटवर्क की जरुरत महसूस कर रहा था, जो किसी एक केन्द्र से नियन्त्रित न होता हो। अमेरिकी एडवांस रिसर्च प्रोजेक्टस को यह काम सौंपा गया। पेंटागन को लग रहा था कि नाभिकीय हमले की स्थिति में सब कुछ सुरक्षित रह सके। सूचना तकनीकी के वर्तमान युग में विभिन्न सूचनाओं को सुचारु रूप से संगृहीत करने तथा आवश्यकतानुसार उनका उपयोग विविध रुपों में करने हेतु जिस मशीन का उपयोग किया जाता है। वह कम्प्यूटर कहलाता है। बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में इलेक्ट्रॉनिक कम्प्यूटरों के निर्माण ने तो इस दिशा में विकास की दशा ही बदल दी है। विश्व भर के कम्प्यूटरों के परस्पर जुड़ाव से बना संचार तन्त्र, जिसे हम इन्टरनेट के नाम से जानते हैं। इस शताब्दी की सबसे बड़ी उपलब्धि है। कम्प्यूटर एक ऐसी स्वचालिंत इलेक्ट्रॉनिक मशीन है जो हमारे द्वारा बताये गये प्रोग्राम के नियन्त्रण में आँकड़ों का संसाधन तेजी से एवं परिशुद्धता से करते हुए उपयोगी सूचनाएं प्रस्तुत करती है। आज के युग में संसाधन की तीव्र गति, उच्च भण्डारण क्षमता एवं विश्वसनीयता के कारण कम्प्यूटर का उपयोग अब व्यापक होता जा रहा है। आविष्कार से लेकर आज कम्प्यूटर ने अपनी विकास यात्रा में कई महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ अर्जित की हैं और उन्हीं के कारण आज कम्प्यूटर का उपयोग मनोरंजन, शिक्षा, संचार, वैज्ञानिक, अनुसंधान और वाणिज्य व व्यवसाय आदि अनेक क्षेत्रों में हो रहा है। कम्प्यूटर का आविष्कार गणना को स्वचालित एवं परिशुद्धता से करने के उद्देश्य से हुआ था। उन

सभी समस्यओं में जहाँ क्लिष्ट गणना होती है। वहाँ आज कम्प्यूटर उपलब्ध है और डाटा कम्युनिकेशन प्रणाली इतनी तेज है कि पलक झपकते ही संदेश इधर से उधर पहुँच जाता है। इंटरनेट का तंत्र मकड़ी के जालों के मानिंद है और उन्हें कहा भी 'स्पाइडर्स वेव' जाता है। हजारों कम्प्यूटर वाले कई जाले टेलीफोन लाइनों के जरिये एक दूसरे से जुड़े है। इनके माध्यम से दुनिया के एक कोने से सूचनाऐं दूसरे कोने पर मात्र एक लोकल काल के खर्च पर पहुँच सकती है। जैसे ई-मेल कोड होता है, वैंसे ही आईनेड कोड होता है। जो कम्प्यूटर को चिह्नित करता है। यदि हमें किसी क्षेत्र विशेष की जानकारी लेनी है तो पहले कम्प्यूटर पर उसे क्षेत्र विशेष का कोड डालना पड़ता डालना पड़ता है जिससे हमें डाइेक्टरी उपलब्ध हो जाती है। तब हम अपनी जरुरत की जानकारी रखने वाले कम्प्यूटरों में एकत्र सामग्री में ब्राउनिग (तांक-झांक) कर सकते हैं। आज विश्वविद्यालय पुस्तकालय कारपोरेट समूह तथा सरकार के हजारों छोटे-बटे नेटवर्क दुनिया के कोने-कोने में फैले हुए हैं। जो मकड़ जाल (स्पाइवर्ड वेव) का काम करते हैं। भारत में विदेश संचार निगम स्पाइडर की भूमिका में आ गया है। इंटरनेट का तंत्र इतना व्यापक है, परन्तु इस नेटवर्क पर किसी का नियंत्रण नहीं है। अत: इस नेटवर्क से जुडे कम्प्यूटर ही सूचना के स्त्रोत हैं। यदि हम इंटरनेट से जुडे हैं, तो हम अपने कम्प्यूटर में एकत्र जानकारी डाटा, टेक्स, ग्राफिक्स, वगैरह बगैर किसी की अनुमति लिए दूसरे उपभोक्ताओं को उपलब्ध करा सकते है। यदि हमने एक बार अपनी कम्प्यूटर फाईलों को इंटरनेट से जोड़ दिया जाय तो दुनिया के किसी कोने में बैठकर कोई इंटरनेट उपभोक्ता हमारी फाइलों में तांक-झांक कर सकता है। इस समय दुनिया में करीब 2.5 करोड़ कम्प्यूटर इंटरनेट से जुडे है आज यह संख्या तेजी से बढ़ रही है। न कम्प्यूटर में विभिन्न क्षेत्रों से संबन्धित इतनी ज्यादा सामग्री एकत्र है कि हमें किसी भी सवाल के एक नहीं 50 जवाब मिल जायेंगें। भारत में निकनेट, एरनेट जैसी सुविधायें हैं, जिनसे सूचनायें प्राप्त करने के लिए शुक्ल देना पड़ता है। यदि कोई एक छात्र एक घटें रोजाना इंटरनेट की सुविधा का फायदा उठाता है तो उसे प्रतिदिन 90 रुपये टेलीफोन विभाग को देने पडेंगे। अमेरिका में भी टेलीफोन को मोडेम या कम्प्यूटर से जुड़ने पर शुल्क देना पड़ता है। साधारण हिसाब या लेखा के रख-रखाव से लेकर राष्ट्रीय एवं अन्तराष्ट्रीय बाजार का प्रबन्धन आज कम्प्यूटरों द्वारा किया जा रहा है। कम्प्यूटर के माध्यम से घर बैठे ही सारे व्यापारिक कार्य सम्पन्न किए जा सकते है। आज लगभग सभी बैंकों में भी कम्प्यूटर पहुँच चुका है और बैकिंग कार्य कम्प्यूटर के माध्यम से ही हो रहा है। एक और सुविधा बैंको में मिल रही है वह है A.T.M यानि ऑटोमिक टेलर मशीन कम्प्यूटर के उपयोग से आज संचार व्यवस्थाओं एवं प्रणालियों में क्रान्तिकारी परिवर्तन

आये है। इंटरनेट पर ई-मेल एक ऐसी सुविधा है जिसकी सहायता से हम विश्व के किसी अन्य कम्प्यूटर से संम्पर्क स्थापित कर सूचनाओं का आदान प्रदान कर सकते है। एक अन्य सुविधा जिसे चैटिंग कहा जाता है जिससे संदेशों का आदान प्रदान तत्काल कर सकते है। प्रकाशन, मुद्रण कार्यों में भी आज कम्प्यूटर का उपयोग हो रहा है। इसी प्रकार मशीनों मकानों इत्यादि के स्कैच बनाने में भी कम्प्यूटर सहायक है। इसके द्वारा नक्शा तैयार किया जाता है। और उसे नक्शे पर आधारित मकान कैसा दिखेगा इसका त्रिआयमी स्वरुप स्क्रीन पर दिखा जा सकता है। स्वास्थ्य सेवाओं में भी कम्प्यूटर का उपयोग बढ़ रहा है। जिसमें अल्ट्रासाउण्ड, केट स्केन, MRI आदि कुछ ऐसे परीक्षण है, जिनका उपयोग करने से विभिन्न बीमारियों के परीक्षण से रोगों का निदान आसानी से हो जाता है। शिक्षा के क्षेत्र में भी कम्प्यूटर का उपयोग दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। खेल-जगत पर कम्प्यूटर की एक अलग पहचान है, जिसने बच्चों से लेकर बड़ी उम्र के लोगों को अपनी तरफ आकर्षित कर लिया है। ऐसे खेल मनोरंजन ही नहीं बल्कि कर रहा है, जो लोग शारीरिक रुप से सक्षम नहीं है। उनके लिए भी कम्प्यूटर एक वरदान सिद्ध हुआ है। कम्प्यूटर के विन्डोज-98 के कन्ट्रोल पैनल में दी गई सुविधा का प्रयोग फोंट प्रबन्धन के लिए किया जाता है। किसी नए फोंट को कम्प्यूटर में स्थापित करने के लिए फाईल मेन्यू के Instal new font विकल्प का प्रयोग किया जाता है। अतः मुख्य कम्प्यूटर सर्वर कहलाता है व शेष कम्प्यूटर ग्राहक कहलाते है। सभी कम्प्यूटर सर्वर से लोकल एरिया नेटवर्क (LAN) या (WAN) वाईड एरिया नेटवर्क द्वारा जुड़े रहते है। जब विभिन्न कम्प्यूटर भौतिक रुप में अलग-अलग जगह उपस्थित होते है और केवल या टेलीफोन लाईनों द्वारा या किसी और माध्यम द्वारा केन्द्रीय कम्प्यूटर से जुड़े होते है। अतः आज कम्प्यूटर का उपयोग जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में बढ़ गया है। अब यह कोई विषय विशेष, वर्ग विशेष के लिए ही उपयोगी हो। ऐसी बात नहीं रही, अतः प्रत्येक व्यक्ति इसका उपयोग अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए कर सकता है।

सन्दर्भ ग्रंथ -

1. प्रयोजनमूलक हिन्दी- डॉ० सुजीत भारद्वाज।
2. प्रयोजनमूलक आधार- डॉ० सुजीत भारद्वाज।
3. कम्प्यूटिंग भाषा- ब्लेज पास्कल

✦✦✦

हिन्दी साहित्य में संस्कृति

-डॉ. नितेश कुमार द्विवेदी
श्रीरघुनाथ कीर्ति परिसर, देवप्रयाग

संस्कृति

संस्कृति किसी समाज में गहराई तक व्याप्त गुणों का एक समग्र स्वरूप है। जो उस समाज को सोचने, विचारने कार्य करने के तरीकों को दर्शाता है। अंग्रेजी भाषा में संस्कृति के लिये कल्चर शब्द का प्रयोग होता है। जो लैटिन भाषा के कल्ट या कल्टस[1] से लिया गया है। जिसका अर्थ है जोतना, विकसित करना, या परिष्कृत करना संक्षेप में किसी वस्तु को यहां तक संस्कारित या परिष्कृत करना कि इसका अन्तिम उत्पाद हमारी प्रशंसा या सम्मान प्राप्त कर सके। संस्कृतभाषा जो कि हिन्दी की मां मानी जाती है। सम् उपसर्गपूर्वक डुकृञ् करणे धातु से क्तिन्[2] प्रत्यय करने पर यह शब्द बनता है। जिसका अर्थ परिष्कृत होता है। अर्थात् उत्तम या सुधरी हुयी स्थिति। सभ्यता मनुष्य के भौतिक क्षेत्र की प्रगति की सूचक होती है, जब कि संस्कृति मानसिक क्षेत्र के उत्थान को दर्शाती है। मनुष्य केवल भौतिक परिस्थितियों में सुधार करके ही सन्तुष्ट नहीं होता वह भोजन से ही नहीं जीता, अपितु आत्मा और मन की सन्तुष्टि ही मनुष्य को तृप्त करने में समर्थ होते है।

मानव जीवन में संस्कृति का महत्त्व

संस्कृति और जीवन का घनिष्ट सम्बन्ध है। संस्कृति कोई मानव जीवन का बाहरी आभूषण नहीं है, अपि तु आन्तरिक सौन्दर्य का द्योतक है। संस्कृति परम्पराओं से, विश्वासों से जीवन की शैली से, आध्यात्मिक पक्ष से भौतिक पक्ष से निरन्तर जुड़ी रहती है। अतः संस्कृति का परित्याग करके मानव जीवन का अस्तित्व ही नहीं रह सकता। संस्कृतियों के परस्पर मेल मिलाप से नई संस्कृति जन्म लेती है। संस्कृति भी भाषा की तरह नित्य प्रवाहशील है। संस्कृति मानव जीवन के उत्थान में अतीव उपयोगी है। संस्कृति के बिना मानव जीवन आत्मा के बिना मृतशरीर जैसा ही होगा। अतः संस्कृति के बिना मानव जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

---

1. Cambridge English Dictionary
2. स्त्रियां क्तिन् पाणिनिसूत्रम्

भारतीय साहित्य की परम्परा विश्व में सबसे प्राचीन प्राचीनतम परम्पराओं में से एक मानी जाती है। प्रारंभ में यह काव्य रूप में था। जिसे गाकर सुनाया जाता था। अत: साहित्य की आरम्भिक कृतियां गीत अथना छन्द के रूप में होती थी। यह परम्परा कई पीढ़ियों तक चलती रही, फिर साहित्य का लिपिबद्ध रूप सामने आया।

संस्कृत्य साहित्य

भारत एक विशाल देश है जिसमें कई भाषा का प्रयोग बोलचाल की भाषा के रूप में होता है। सभी भाषाओं का अपना साहित्य होता है। इस प्रकार भाषा एवं साहित्य की दृष्टि से भारत विश्व का धनाढ्य राष्ट्र माना जाता है। भारत एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र है। तथापि हिन्दू धर्म मतावलम्बियों की संख्या अधिक होने के कारण हिन्दू धर्म का प्रभाव है। वेदों के अलावा जो कि एक धार्मिक ग्रन्थ के साथ भारतीय ज्ञान का भण्डार के रूप में विश्व की प्राचीनतम पुस्तक ऋग्वेद की भाषा संस्कृत है। जिससे ज्ञात होता है कि सम्पूर्ण भारतवर्ष में संस्कृतभाषा का प्रभाव था। वेदों के अलावा भारतीय संस्कृति को दर्शाने वाले अनेक ग्रन्थ है रामायण, महाभारत, भवन निर्माण और नगर योजना को दर्शाने वाले वास्तु शिल्प के ग्रन्थ, राजनीतशास्त्र में अर्थशास्त्र[1] जैसे शोधग्रन्थ।

भारत एक धर्मपरायण देश है। अत: भौतिक ज्ञान के साथ ही आध्यात्मिक ज्ञान का विकास भी भारत में विश्व की अपेक्षा अधिक हुआ है। **वसुधैव कुटुम्बकम्।**[2] तथा पूरे विश्व के मङ्गल की भावना **सर्वे भवन्तु सुखिन:**[3] की भावना भारतीय साहित्य में अनिवार्य रूप से पायी जाती है। हिन्दी साहित्य का मूल संस्कृत साहित्य है। इसमें लेश मात्र भी सन्देह नहीं है।

हिन्दी साहित्य

हिन्दी साहित्य का आरम्भ मध्यकाल में अवधी और ब्रजभाषाओं में धार्मिक और दार्शनिक काव्य रचनाओं से हुआ। इस काल के प्रसिद्ध कवियों में कबीर और तुलसी विख्यात हैं आधुनिक युग में खड़ी बोली ज्यादा लोकप्रिय है।

देवकीनन्दन खत्री द्वारा रचित चन्द्रकान्ता को हिन्दी गद्य की प्रथम कृति माना जाता है। मुंशी प्रेमचन्द हिन्दी के प्रसिद्ध उपन्यासकार थे। मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकरप्रसाद, सुमित्रानन्दन पन्त, महादेवी वर्मा, रामधारी सिंह दिनकर इत्यादि

---

1. चाणक्य द्वाररचित जिसे कौटिल्य अर्थशास्त्र के नाम से भी जाना जाता है।
2. अयं निज: परो वेति गणना लघुचेतसाम्। उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।
3. सर्वे भवन्तु सुखिन: सर्वे सन्तु निरामया:। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दु:ख भाग्भवेत्।।

सरस्वती के वरद पुत्रों ने हिन्दी साहित्य को समृद्ध बनाने में अभूतपूर्व योगदान दिया है। मुख्य कवियों का संकलन इस पद्य में किया गया है।

हम कबिरा की साखी जैसे, खुसरो की अमर रुबाई है
हम मीरो गालिब की गजलें रसखान चन्दबरदायी है।

सूरदास तुलसी मीरा, दिनकर औ पन्त निराला है
भूषण केशव मति राम ज्यायसी बच्चन की मधुशाला है।

बन प्रेमचन्द गोदान लिखा, माधव का गीता ज्ञान लिखा,
बन रामचरितमानस हमने मानवता का वरदान लिखा।

जब वक्त पड़ा अनुबन्ध बने, महके मन से मकरन्द बने,
हम विद्यापति की पदावली रस, अलङ्कार और छन्द बने।

ओशो जन्मे टैगौर बने, भक्ति-रस का आनन्द बने,
एकात्म जगा अध्यात्म बता कर हमीं विवेकानन्द बने।

भारतीय संस्कृति को समझने के लिये भारत को जानना बहुत आवश्यक है आज भी समूचे भारत में खान पान रहन-सहन, वैवाहिक, बोल चाल इत्यादि की दृष्टि से बहुत भिन्नता दिखायी देती है। अतः भारत को संस्कृतियों का देश कहा जाता है। साहित्य के द्वारा किसी न किसी रूप में संस्कृति को ही लिपिबद्ध किया जाता है। जैसे-ऐतिहासिक ग्रन्थों में भौगोलिक संस्कृति का वर्णन होता है।

कथा साहित्य में समाजिक परिस्थितियों का वर्णन होता है। तथा मानव मूल्यों के आदर्श रूप देने की कोशिश साहित्यिक ग्रन्थों में की जाती है। मानव जीवन के उत्थान में बाधक तत्त्वों के ऊपर प्रहार भी किया जाता है। जैसे-

जाति-पाति पूछै नहि कोई। हरि को भजै सो हरि को होई॥

माखन लाल चतुर्वेदी ने पुष्प की अभिलाषा नामक कविता से देश प्रेम की संस्कृति को अभिव्यक्त किया है। जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी। अतिस्वर्णमयी लङ्का न मे लक्ष्मण रोचते। इसी का भाव कविता के पद्य में है।

कि मुझे तोड़ लेना बनमाली उस पथ पर देना तुम फेंक।[1]
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने जिस पथ जायें वीर अनेक॥

भारत के यशस्वी पूर्वप्रधानमन्त्री तथा जनमानस के प्रिय नेता भारतरत्न पं. अटलबिहारी बाजपेयी जी को नमन करते हुये- उनका एक पद्य प्रस्तुत करके इस निबन्ध को यहीं विराम देता हूँ।

---

1. पुष्प की अभिलाषा

होकर स्वतन्त्र मैने कब चाहा है कर लूं सब को गुलाम।[1]
मैने तो सदा सिखाया है करना अपने मन को गुलाम॥

गोपाल राम के नामों पर कब मैंने अत्याचार किया।
कब दुनिया को हिन्दू करने घर-घर में नरसंहार किया।

कोई बतलाये काबुल में जाकर कितनी मस्जिद तोड़ी,
भू भाग नहीं शत-शत मानव के हृदय जीतने का निश्चय।
हिन्दू तन मन हिन्दू जीवन रग-रग हिन्दू मेरा परिचय॥

इस पद्य में हिन्दू संस्कृति का परिचय भलीभांति दर्शाया गया है। इति दिक्

✦✦✦

1. हिन्दु तन मन इस कविता का पद

Sanskrit the most suitable language for natural language processing

-Shri Pankaj Kotiyal

Abstract

The goal of natural language processing (NLP) is to build computational models of natural language for its analysis and generation. First, there is a technological motivation of building intelligent computer system such as machine translation system, natural language interface to databases, and man-machine interface to computers in general, speech understanding systems, text analysis and understanding systems, computer aided instruction systems, systems that read and understand printed or handwritten text. Second, there is ac cognitive and linguistic motivation to gain a better in-sight into how human communicate using natural language (NL).

Introduction

Parsing is the process of analyzing a string of symbols either in natural language or computer languages according to the rule of formal grammar. Determine the functions of words in the input sentence. Getting an efficient and unambiguous parse of natural languages has been a subject of wide interest in the field of artificial intelligence. The computational grammar described here takes the concept of vibhakti and karaka relations from Panini framework and uses them to get an efficient parse for Sanskrit Text.

Vibhakti guides for making sentence in Sanskrit and there are seven kinds of vibhakti. Vibhakti also provides information on respective karaka.

These seven vibhkti's are :

- **Prathama (Nominative) -** To address nouns (proper/common) **Example**-Ram eats a fruit.
- **Dvitiya (Accusative) -** The accusative part of the sentence is generally the object on which the action is being performed. **Example**-Ram gives the book.
- **Tritiya (Instrumental) -** It denotes the instrument with which the action is being performed. **Example**-Ram writes with a pen.

- **Chaturthi (Dative)** - This case denotes the object for which the object is being performed. **Example**- Ram works for his children.
- **Panchami (Ablative) -** It expresses the point of separation of the object. **Example**- Ram fell from the chariot.
- **Shhashhthi (Possessive**) - The word declined in the genitive case is the possessor of the object. **Example** - Ram's house is made of bricks.
- **saptami (Locative) -** It signifies the location of the object. **Example**-Ram is sitting on the floor.
- **Sambodhana(Denominative) -** This case is used to address a person or an object. **Example**- Oh Ram! Please help us

- Karaka approach helps in generating grammatical relationship of nouns and pronouns to other words in a sentence.

Natural Language Processing

Natural language processing is the sub field of artificial intelligence devoted to make computers understand statements or word written or spoken in human language. The field of Natural Language Processing (NLP) involves making computers to perform useful tasks using languages used by humans. The two major parts of natural language processing include natural language understanding at the input side and the natural language generation at the output side. In natural language processing input and output could be text or speech. Natural language understanding involves

- Mapping the given input in natural language into useful representation.
- Analysing different aspects of the language.

Natural Language Generation Involves

- **Text planning**-It includes retrieving relevant content from knowledge base.
- **Sentence planning**- It includes required word and forming meaningful phrases.

Application of Natural Language Processing

Natural language processing provides a better human-computer interface that could aid artificial intelligence systems to pervade more efficiently into the

present day applications like:

- Natural language processing system for blind people to interact with computers with speech input.
- The chair of Stephan hawking which converts text into speech.
- The translation program that could translate from one human language to another.
- A program which checks for grammatical errors in a given text.

Ambiguities in Natural Language Processing

Ambiguity refers to the property of words or sentences having more than one meaning or being interpreted in more than one way. Most of the natural languages are ambiguous, rendering computers unable to extract the appropriate interpretation of the input language in some situations. This is a unique feature of Sanskrit language which is not supported by most of the languages creating confusion while processing dual and plural. A comparison study between the given four languages is presented below:

1. French

- Singular Case: chez le garcon- in the boy
- Dual Case: entre les garcons - between the boys
- Plural Case: parmi les garcons - among the boys

2. Spanish

- Singular Case: en el nino - in the boy
- Dual Case: entre los chicos - between the boys
- Plural Case: entre los chicos - among the boys

3. English

- Singular Case: in the boy
- Dual Case: between the boys
- Plural Case: among the boys

4. Sanskrit

- Singular Case: baalkey (in the boy)
- Dual Case: baalkayo: (between the boys)

- Plural Case: baalkeshu (among the boys)

Thus we can see that only in Sanskrit there is a clear difference between dual and plural case and thus we can get an error free NLP, whereas in other languages even the human mind can get confused between dual and plural case.

Sanskrit for Natural Language Processing

Sanskrit is one of the very few languages which has formal defined grammar. The learning of this language starts with understanding of the fundamental rules and norms which are to be abided by unlike other natural languages which are learnt in due course by continual communication. The grammatical "Treatise" 'Ashtadhyayi' with 3959 sutras (formulae or rules) composed by the ancient grammarian Maharshri Panini is referred to by many scholars as the crude form of coded efficient language. This language has a rich and often rigid declension of noun indicating their relationship to each other in sentences and this makes the language more conducive to be approximated to a semantic net model used in artificial intelligence system.

Sanskrit's Association with Programming Language

Sanskrit, with all its vibhakti's and grammatical rules can be more or less approximated to a programming language with classes and objects. All the words that are used to make a sentence in Sanskrit are fundamentally properties when appended with a proper case these words can be treated as object.

Consider an example, "Sadhujanahpoojitavyahdevahkhaluprithivyaam"

Meaning: The good one worshipped who is indeed a God on earth. Here, 'saadhujana' is the property of being good, 'poojitavya' is the property of worshipping, and 'deva' is the divine property. When declined in the nominative case, all the three words act as pointers to one common object i.e. words declined in the same case behave as pointers to a single object. In this case, the object may be a person whose attributes (properties) are being good, worthy of worship and of godly stature.

A Standard Method for Analyzing Sanskrit Text

For every word in a given sentence, machine/computer is supposed to identify the word in following structure.

Word

Given a sentence, the parser identifies a singular word and processes it using the guidelines laid out in this section. If it is a compound word, then the compound word is breakdown in to two part for e.g. vidhyalaya = vidhya + alaya

Base

The base is the original, uninflected form of the word. For Simple words: The computer Activates the DFA on the ISCII code (ISCII,1999) of the Sanskrit text. For compound words: The Computer shows the nesting of internal and external samas using nested parentheses. Undo sandhi changes be-tween the component words.

Form

It contains the information about the words like verbs or action to be performed

- For undeclined words, just write u in this col-umn.
- For nouns, write first m, f or n to indicate the gender, followed by a number for the case (1 through 7, or 8 for vocative), and s, d or p to indicate singular, dual or plural.
- For adjectives and pronouns, write first a, followed by the indications, as for nouns, of gender (skipping this for pronouns unmarked for gender), case and number
- For verbs, in one column indicate the class ( ) and voice.

Relation

- As we read from the above, this attribute gives the relationship between the different words coming in a sentence.

Rulebase for Sanskrit

- **Samjna Sutra**

It assigns attributes to the input string thereby creating an environment for certain sutras to get triggered.

- **Adhikara Sutras**

It assign necessary condition to the sutras for getting triggered (÷)

- **Paribhasha Sutras**

It takes decision and help us in resolving a conflicts and deadlock conditions . It also provides a meta language for interpreting other sutras.

The input for our system is the karaka level analysis of the nominal stem and the output is the final form after traversing through the whole Astadhyayi

Algorithm for Sanskrit Parser

The parser takes as input a Sanskrit sentence and using the Sanskrit Rule base from the DFA Analyzer, analyzes each word of the sentence and returns the base form of each word along with their attributes. This information is analyzed to get relations among the words in the sentence using If Then rules and then output a complete dependency parse. The parser incorporates Panini framework of dependency structure. Due to rich case endings of Sanskrit words, we are using morphological analyzer. To demonstrate the Morphological Analyzer that we have designed for subsequent Sanskrit sentence parsing, the following resources are built:

- Nominal rule database (contains entries for nouns and pronouns declensions)
- Verb rule database (contains entries for 10 classes of verbs)
- Particle database (contains word entries)

Now using these resources, the morphological analyzer, which parses the complete sentences of the text is designed.

Morphological Analysis

In this step, the Sanskrit sentence is taken as in put in Devanagari format and converted into ISCII format. Each word is then analyzed using the DFA. Following along any path from start to final of this DFA tree returns us the root word of the word that we wish to analyze, along with its attributes. While evaluating the Sanskrit words in the sentence, we have followed these steps for computation:

- First, a left-right parsing to separate out the words in the sentence is done.
- Second, each word is checked against the Sanskrit rules base represented by the DFA trees in the following precedence order: Each word is checked first against the avavya database, next in pronoun, then verb and lastly in the noun tree.

Conclusion

In this paper, we tried to describe the reasons to support Sanskrit as a language for Natural Language Processing as compared to other languages because of it vast and intelligent grammar and various properties such as

- Words describing the properties rather than objects.
- Special attention to dual case.
- Extensive use of vibhaktis.
- Support for high inflection and,
- Extremely refined pronunciation of each and every word.

Using Sanskrit preferentially for research and development should be explored, rather than making use of a foreign language adding fame to the Indian heritage.

References

1. Natural language processing: A paninian perspective By Akshar Bharati, Vineet Chaitanya , Rajeev Sangal
2. Briggs, Rick. 1985. Knowledge Representation in Sanskrit and artificial Intelligence, pp 33-39. The AI Magazine.
3. Analysis of Sanskrit text: parsing and semantic relations by Pawan Goyal, vipul Arora, Laxmidhar Behera.
4. vyakaran parimal by Dr. Ravindra Dergan and Shri Kamlesh Dergan, sultan Chandra and sons (pvt).ltd.
5. Panini grammar in computer science by Parul Saxena, Kuldeep Pandey and Vinay Saxena
6. A case for Sanskrit as a computer programming language by P. Ramanujum
7. Briggs, Ricks. 1985. Knowledge Representation in Sanskrit and Artificial Intelligence, pp 33-39. The AI Magzine
8. Sharma Ram Nath, 1987, The Astadhayayi of panani, Volume I, Munshiram Manoharlal Publishers Pvt. Ltd, New Delhi
9. Sharma Ram Nath, 1990, The Astadhayayi of panani, Volume II, Munshiram Manoharlal Publishers Pvt. Ltd, New Delhi
10. A Higher Sanskrit Grammar. 4th Ed, Motilal Banarasidass Publishers Pvt. Ltd

R.K. Narayan's *Swami and Friends* : A Study of Indian Culture and Tradition

–Dr. Ashok Joshi
Govt P.G. College New Tehri
Tehri Garhwal (Uttarakhand)

R.K. Narayan's novels are expressive of a cultural and traditional disintegration in all forms of social intercourse, and also of the consequential feelings of restiveness and discontentment. While Malgudi, the microcosm of Indian Society, remains by the large blissfully immersed in the old cultural values. Narayan's first novel Swami and Friends, artistically present a clash between Indian culture and tradition. Through Swami and Friends, Narayan clearly demonstrates how in the orthodox society of Malgudi, which is mainly inhabited by the middle class people, tradition holds its sway over the individual consciousness through the institutions of education, family and religion. In its nineteen chapters the novel charts the various episodes in the life of Swaminathan, a young school boy, who seeks his identity in the company of friends like Mani, Rajam and Sankar. These urchins are daring and enterprising lads who represent the youth power of Malgudi. They are all endowed with a lively imagination and impress spontaneity. Unruffled by the oppressive influence of orthodoxy and superstition they lead a life of unmixed joy and gaiety. The novel depicts the ideals, aspirations and frustrations of the Malgudian youths as their sensitive minds and hearts find themselves pitched against oppression, injustice and exploitation at different stages. Things that fascinate the eye of the Young. Enchant their souls and cast a spell on their vivid and expansive imagination. Such inspiring things stir in them a desire to break the bonds of habitual living and the new changes whip up their passion to embrace a life of complete freedom.

In this novel, the paradox of tradition and culture is skillfully presented through the description of the school life with its seriousness and severity and the children's deep repugnance for it, through the parents' zeal to educate their wards and the young ones' natural aversion to learning. As a matter of fact, no

father, despite the unhappy memories of his own school days, wants his child to be absent from school. Narayan very humorously observes:

> No adult ever speaks the truth about his school days, partly Out of bad memory and partly out of diplomacy. The man does Not want his child to take his schooling casually. But the fact Remains that no child with red blood in its veins could ever Think of its school with unqualified enthusiasm. It is no useAsking why it is so. It is so and it is to be accepted as an Inevitable fact. The Monday-morning feeling is a solid reality. No adult experiences it as keenly as a child.(41)

Narayan focuses on middle class family in the small town of Malgudi and incorporates numerous features of a traditional living. It is a patriarchal society where the father's influence is most meaningful and all-pervasive. The Hindu father, being head of the family, has a moral duty to help his son settle well in life. The father can hope for the safe continuity of traditions in future only if his son is properly educated. The forebodings of a son's failure in life always haunt an over-indulgent father. All his efforts are directed to redeem himself of his sacred parental debt (Pitri Rina). In Swami and Friends, swami's father, a lawyer by profession and strict disciplinarian by nature, is an archetype of all father-figures in Narayan's novels. He has given "definite orders that Swaminathan should not start loafing in the afternoon and that he should stay at home and do school work"(23) even on holidays. Much to Swaminathan's displeasure, his fathers's courts close for summer vacation in the second week of may, and the father's stay at home in the afternoons interferes in his ramblings with Rajam and Mani.

But the well-meaning father inescapably meets much frustration when his advice to his son falls flat on swami's ears. Craving to enjoy an absolute freedom, swaminathan has a natural dislike for the school campus. He considers it the most unwanted place on earth.Freedom-loving Swami is inwardly drawn to sports, cricket, friends and political hooliganism. The very sight of his teachers repels him. He develops special hatred for the fired-eyed Vedanayagam, his Arithmetic teacher who gives a very hard massage to his ears and soft flesh when he fails to solve the Sums correctly. Much more abominable is the behavior of Mr. Ebenezar, the fanatic scripture- master. Mr. Ebenezar carries his prejudices against the Hindu religion to the class-room and uses derogatory terms for the Indian gods. Thus, through Ebenezar, Narayan focuses our

attention of the prevalence of narrow-mindedness, bigotry, intolerance and orthodoxy in the name of religion in the town of Malgudi.

Unlike the orthodox parents and teachers, the younger generation is deeply affected by new ideas and attitudes brought into wake by the Indian renaissance. The spirit of arrogance and open defiance to authorities were the cardinal characteristics of the mass movement for freedom. Swami and his school mates are carried away by patriotic fervour, and in a mood of defiance they give up the customary habits of discipline and obedience on 15th of August, 1930. The British Government arrests Gauri Shankar, a prominent political worker of Bombay. As a result, students of Albert Mission school join the procession with thousands of other citizens of Malgudi. They shout slogans like "Gandhi ki Jai: Bharat Mata Ki Jai!,"(97) and indulge in hooliganism," howling, jeering and hooting."(98) The students observe a Hartal at the school gate and openly defy orders Form their Teachers :

> The boys stood firm. The teachers, including D. Pillai, triedAnd failed. After uttering a warning that the punishment to Follow would be severe, the head master withdrew. Thundering shouts of "Bharat Mata Ki Jai: Gandhi ki Jai and 'Gauri Shankar Ki Jai' followed him....(97)

Through such incidents, Narayan exposes some of the deplorable aspects of the existing educational system. The utter disregard for their teachers by the school boys is largely due to some basic flaws in the system of education. Indian education is hackneyed, orthodox and un-Indian in its character. Conceived by the Britishers and implemented by the Indian elite, it is entirely unsuited to the needs of Indian society. Indian schools with their inordinate emphasis on study of the English language and literature and maintenance of strict discipline have turned out to be veritable jails where the inmates go in only to take lessons in mental and physical suffering. School education in India suffers from many oddities- foremost of them being the dread of corporal punishment, increasing load of text-books, bigotry of the Christian teachers, sadistic devices of admissions and fear of examinations.(18) These unhealthy practices have an adverse effect on the impressionable minds of the tiny school children, and breed in them a natural aversion to educational institutions. At times, it also results in an open defiance of teachers. When the school fails to provide children with adequate facilities for games and sports, they indulge in rowdysm and hooliganism. In order to ventilate their disgust for the school, they give up their studies, defy orders of their teachers and even throw stones

at window-panes.

Swami and friends offers an interesting study of the problem of growing indiscipline an unruly behavior on school campus. Swami and his school-mates are innocent boys who need constant guidance and patronage. The crude and unpsychological methods of enforcing discipline through caning, chastising, and flogging, cancelling attendance and imposing heavy fines, make the matters worse. The day after the students' 'hartal' is observed as a day of trial and punishment. Boys have to pass through the Rigours of an inquiry and are made to stand on benches. When they fail to give any convincing explanation for their deliberate absence for the school on the previous day, they all take recourse to flagrant lies and lame excuses. Not satisfied with caning and chastising, the callous headmaster punishes them with suspension from the school. Like others, Swaminathan too, is singled out and vigorously flogged for his violent acts. Swami suffers both physically and mentally. The headmaster emerges as a symbol of teachers' inhuman cruelty when he threatens swami thus: "I will kill you if you keep on staring without answering my question." swami becomes unconsciously defiant and takes a desperate decision to quit the school for ever. Narayan remarks:

> Every pore in Swaminathan's body burnt with the touch of the Can. He had a sudden flood of courage, the courage that comes of desperation. He restrained the tears that were threatening to Rush out, jumped down, and grasping his books, rushed out Muttering, "I don't care for your dirty school. (106)

These incidents of open defiance disprove the soundness of orthodox sayings like "spare the rod and spoil the child," or "the unbeaten brat will always remain unlearned,"(11)which are still prevalent in Indian schools.Narayan's protagonist may be critical of the cultural values and existing moral order for the time being, yet his belief in tradition is quite deep. In the moment of crisis he reverts to the old way of life with a renewed understanding. In Swami and Friends young and inexperienced urchins are first presented as equipped with a zeal for revolt. But when swami is left with only six pies to support himself, he faces an acute shortage of money. In such critical moments Swaminathan can think of no better shelter than Lord Rama. In the Puja room he closes his eyes and mutters :

> Oh,Sri Rama: thou hast slain Ravana though he had ten Heads, can't you give me six pies?.... it I give you the six

pies Now, when will you give me the hoop? I wish you would tell Me what that herb is… Oh Rama: Give me six pies and I will Give up biting my thumb for a year…'(70)

Thus Narayan's protagonist, despite his deep desire to realize his personal ambitions, cannot afford to live in isolation for long. His disregard of tradition, cultural values and established institutions is temporary. Having failed in his mission, he returns to the old way of life with a better understanding. By describing the frustration of swami's escapade in quest of personal freedom, Narayan seems to affirm his faith in the efficacy of traditional institutions over individualistic tendencies.

References

- Narayan R.K.," No school today," Nest Sunday (New Delhi: orient paper backs), 1976.
- Narayan R.K., Swami and friends (Mysore: Indian thought publications), 1971.
- Narayan R.K. ," My educational outlook," reluctant Guru (Delhi: Hind pocket Books), 1974.
- Narayan R.K. , the Guide (Mysore: Indian thought publications), 1971.
- Williams H.M, indo-Anglian literature : A survey (1800-1970).
- Indo Anglian Literature (1800-1970): A survey.

✦✦✦

Bertolt Brecht's approach to drama and theatre with special reference to the play <u>The Caucasian Chalk Circle</u>

– Dr. Preetam Singh

Assistant Professor, Deptt.of English
Govt. P. G. College New Tehri
TehriGarhwal (Uttarakhand)

Bertolt Brecht is one of the outstanding figures of 20th century drama. His drama is usually seen as promulgating Marxist or socialist ideology, and the content of his drama substantiates his very vision and views which he subscribed to. His concept of 'epic theatre' revolutionized the theatre by creating radical breaks from traditional literary and theatrical form. Though the term 'Epic theatre' is considered as an exact designation for Brechtian theatre, but Brecht in his later phase of career moved away from the term 'epic', and prefer to change its denomination to 'dialectic theatre'. Nonetheless according to Ewen, "it is epic theatre that has remained associated with Brecht's name, and though there were before him, and were to be after him, many practitioners of this type of theatre, consensus has been made that form Brecht's own domain" (199-200). Brecht drew this term 'epic' from Aristotle, "to define the narrative form in which, according to Aristotle, it is possible to describe " a number of simultaneous incidents," and which are not bound by the organic structure of tragedy as to unities" (Ewen 213).Willett states, the term 'epic' "is an Aristotelian term for a form of narrative that is 'not tied to time', whereas a'tragedy' is bound by the unities of time and place" (Willett 168).

The Caucasian Chalk Circle (1943-45).is Brecht's last full-length play, placed among the group of plays which he wrote during his six-year stay in the United States. Its source of inspiration is traced back to an earlier play by Klabund's*The Chalk Circle*. The play in itself is said to be based on a Li Hsing-tao's fourteenth-century Chinese play with the same name. Brecht revised the content of this already used story into a parable form and shifted its setting to Soviet Georgia in time the near end of World War Second.

The playopens in a village with a Prologue that deals with a dispute over a valley. Two groups of peasants stake their claim a valley that was abandoned during World War Second. One group used to live in the valley and herded goats there. The other is from a neighboring valley and hopes to plant fruit trees. Both had been driven from their settlements by the war, but are now returning. A Delegate has been sent to arbitrate the dispute. The fruit growers have elaborate plan to irrigate the valley and produce in plentitude a tremendous amount of food. The goat-herders claim the land arguing that they have always lived there. Their discussion is lively but peaceful. In the end, the fruit growers get the valley because their irrigation scheme would provide water for both the groups, and make the valley financially viable. The goat herders cheerfully accept the logic and play is announced, to be performed by the fruit growers. It is called *The Chalk Circle*.

The Caucasian Chalk Circle is actually two stories that blend together at the end. The play is narrated by singer and embarks on the first story of a servant girl, Grusha, who rescues the Governor's son when their city falls under siege. The son, Michael, has been left behind, without as much as a backward glance, by his fleeing mother. Grusha escapes, with Michael in her arms, to the mountains where they live for over a year. Along this journey, countless people and places come across, a number that would only take place in epic theatre.

In truly epic fashion, the play then reverts to the beginning of the second story and introduces a man, Azdak. By chance, this character becomes an immoral and almost absurd judge in Gushan and Michael's former city. The paths of Grusha and Azdak cross when Grusha is called to the trial that will determine who is to have the custody of Michael: his biological mother or the servant girl Grusha who has cared for him the past years?Azdak's ruling results from the outcome of the Chalk Circle test. Grusha is awarded the child and hence, though the law has succumbed, justice has prevailed.

The first scene titled 'The Struggle for the Valley' acts like a prologue. After a close analysis, the audience will find that the prologue is entirely of leftist leaning in its message. Any capitalist society would argue that whoever originally owned the land should get it, but Brecht instead argues that whoever can best use the land should get it. He cleverly presents his ideas at the outset of the play. The audience receives the moral of the play beforehand without even having to watch it.In the play's format the singer is placed centrally. He presents the story directly to the audience. The singer narrates what is to occur

at the commencement of each scene which subsides intense curiosity. For instance, after the prologue, the singer starts the scene with a song:

Once upon a time
A time of bloodshed
When this city was called
The city of damned
It had a Governor.
His name was GeorgiAbashvili
Once upon a time.
He was very rich
He had a beautiful wife
He had a healthy child
Once upon a time.
No other governor in Grusinia
Had as many horses in his stable
As many beggars on his doorstep
As many soldiers in his service
As many petitioners in his courtyard
Once upon a time . . . (*The CaucasianChalk Circle,* sc. ii)

As the song ends, "Beggars and petitioners stream from a palace gateway, holding up thin children, crutches, and petitions. They are followed by two Ironshirts and then by the Governor's family, elaborately dressed" (Sc. ii).

The Singer makes the audience familiar enough with the plot beforehand, so as to refrain them from becoming emotionally involved. The format of furnishing prior information via singer before narrative action recurs throughout the play. Before any action the storyteller enters and starts singing again, thereafter there are dialogues between Governor, his wife, the doctor and some officers. Somebody comes with an important message, but the Governor shows indifference towards him. In the intervening time, once again, the storyteller enters and starts singing. Thus, within no time we have a variety of songs which hiders the development of the story line. The device alienates the spectator from emotional involvement. The audience is not transported imaginatively and emotively to the fictional world of illusion of reality by inducing 'empathy', as is done in the Aristotelian illusionistic dramatic theatre. In *The Caucasian Chalk Circle*, Brecht was clear about the role of the singer:

[The play] uses the fiction that the singer stages the whole thing, i.e. he

arrives without actors, the scenes are just representations of the main episodes of his story. Nonetheless, the actor must act as if he were the director of a company: he strikes the floor with a little hammer before entrances, making it clear that at certain points he is supervising the proceedings, watching for his next cue, etc. This is necessary to avoid the intoxicating effects of illusion. (Unwin 230)

Brecht's techniques of projecting messages of what will happen in the proceeding scenes often make his complicated plots less confusing. In this play, before the assassination of the Governor, the singer provides the narration by these lines:

Then the Governor returned to his palace
Then the fortress was a trap
Then the goose was plucked and roasted
Then the goose was no longer eaten
Then noon was no longer the hour to eat
Then the noon was the hour to die. (*The Caucasian Chalk Circle*, sc. ii)

Brecht's fore informs audience about the forth coming action of the play in order to cast off the element of suspense (arousing curiosity about the events to come) they are thereby detached from the aesthetic tension. After the execution of the Governor and escape of his wife, Grusha picks up the child and instantly quits the place. This looks like an act of charity, as she places value on human life, unlike the other people who advise her to give up Michael. Brecht points out to the audience that they should not be seduced by how good Grusha appears to be. In reality she is a thief:

She does what the singer says as he describes it.
Like booty she took it for herself
Like a thief she sneaked away. (Sc. iii)

The matter is left open to the audience to decide by themselves, whether Grusha is a thief and liable to be punished or whether she is the real hero who should be rewarded for keeping the child safe from the hands of ransacking soldiers.Grusha suffers hardships because of the additional burden of the child rearing. In an effort to give the child status, she marries a peasant who feigns mortal illness to escape the military. However before her flight, she and a soldier had plighted their troth. When the disturbance is over, the soldier returns, finds her with the boy, and, misunderstanding the situation, leaves her. The play defines her social morality. Grusha, "brings her social morality into play

and makes the child her own through her own privations and sacrifices" (Unwin 227). But Brecht describes her as a 'sucker' (he used the American phrase) and that, "the more she does to save the child's life, the more she endangers her own" (*Ibid.*). Thus, the audience is made aware of the point that she illegally appropriates the child; therefore all her acts are self-contradictory and suicidal.

The second major episode of the play deals with the tramp Azdak who, "at the outbreak of the upheavals had hidden an escaping Grand Duke, and in the midst of the hurly-burly is appointed local judge. His fantastic decisions and verdicts are all topsy-turvy. He takes from the rich and gives to the poor" (Ewen 412). Strangely, enough, in the characterization of the figure of Azdak, the decrepit judge, Brecht has to encounter so much difficulty. He remarks on the issue:

The problem of how to construct the figure of Azdak helps me up for two weeks until I realized the social reason for his behavior. At first all I had was his disgraceful handling of the law, under which the poor came off well. I knew I couldn't just show that the law as it exists has to be bent if justice is to be done, but I realize I had to show how, with a truly careless, ignorant, downright bad judge, things can turn out all right for those who are actually in need of justice. That is why Azdak has to have those selfish, amoral, parasitic features, and be the lowest and most decrepit of judges. (Unwin 227)

As a reaction against contemporary social system, Brecht's plays, so often articulate anger towards the immoralities of the society. In *The Caucasian Chalk Circle*, the Ironshirt, while watching Azdak to be a judge, says, "The judge was always a rascal. Now the rascal shall be the judge" (*The Caucasian Chalk Circle*, sc. v).

Brecht's foremost concern is to purify the society, and make the audience aware of the malicious surroundings. Consequently didacticism consciously or unconsciously seeps into his drama. There we have Azdak who sits in judgement on Grusha, the Governor's wife and the child. He hits upon the device of the chalk circle. Through this apparently funny device he reaches the truth. He allots the child to Grusha. Similar through another funny trick, he divorces her from her husband, and enables her to retain her fiancé, Simon Chachava, as well as the child. Never-the-less, the judgment he announces proves favourable to Grusha not because he is a judge, good or wise, but because he is drunk and corrupt. Brecht points out to the audience that, "in a corrupt world the poor only stand a chance of receiving justice if it is being dispensed by a corrupt judge" (Unwin 227)

The singer sums up the meaning of the story to the audience:

But you, who have listened to the story of the Chalk Circle
Take note of the meaning of ancient song:
That what there is shall belong to those who are good for it, thus
The children to the maternal, that they thrive;
The carriages to good drivers, that they are driven well;
And the valley to the waterers, that it shall bear fruit. (*The Caucasian Chalk Circle*, sc. vi)

Thus, Brecht manages to construct the climax on the sound point of the play: the child should be given to the person who will protect it, just as the valley should be owned by those who can best look after it.Brecht has characterized the figure of Grusha and Azdak in such a way, that the audiences do not wish to identify with. Grusha's salvation of Michael is not a maternal and noble act, but more of a disheartened resignation. The period of Azdak's life as a judge, was not a time of complete justice. Both Azdak and Grusha have been so much 'estranged' from us as to be able to accept them as models or heroes to emulate.

References

- Unwin, Stephen. *A Guide to the Plays of Bertolt Brecht*. London: Methuen, 2005.
- Brecht, Bertolt. *The Caucasian Chalk Circle*. Ed. By John Willett and Ralph Manheim. New York: Arcade Pub., 1994.
- Ewen, Frederic. *Bertolt Brecht: His Life, His Art and His Times*. New York: CarolPub. Group, 1967.
- Willett, John. *The Theatre of Bertolt Brecht: A Study from eight aspects*. London:Methuen Drama, 1977.

✦✦✦

Communist Disillusionment in *The Golden Notebook* of Doris Lessing

–Dr. Laxmi R. Chauhan

When Lessing was in her real communist phase, she and the people around her really believed that something like 10 years after the World War-II, the world would be Communist and perfect. Secondly, they believed that there was no way to paradise but by revolution. Doris Lessing and her comrades despised anyone who did not believe in revolution- that is with a few exceptions. They were united with each other by superiority of character, because they were revolutionaries and good. Their opponents (capitalist) were considered bad. People who did not believe in socialism were not credited with good intentions. According to Lessing, 'so strong is this need to believe ourselves better that, as recently as 1992, after all the storms of murder, torture, deliberate genocide committed by communists, a female red reproached me with ; ' How can you turn your back on the truth ? I thought you were a good person'. (*UMS* 281) Faith has always been broken excruciatingly. At one point of time or other every communist, it seemed had to undergo this trauma of breaking faith. We stick to same belief with full dedication and are always obsessed with the idea that come to our mind regarding it, and finally one fine morning we wake to find that what we had been following for years was nothing but sham, a gimmick, a propaganda that had its baseless followers for centuries! How many of us, in this case, would be able to be sensible and logical about what we had been saying for so long. There will be a void created in our mind and soul's soul that will leave us empty with nothing, nothing at all to say, to prove, to follow! Everything would appear 'to be cracking' as Anna Wulf say's in *The Golden Notebook*. The loss of faith it seems, was faced by every communist, in almost every part of the world. Communist believed that they were a part of a family that covered the world. It was considered that a communist can arrive anywhere and at once be at home as they shared the same social value. They were united by their ethics and integrities.

Moreover, a communist was believed to be always better than everyone else, work harder, study more, look after people, and always be ready to do the dirty work, both as a human responsibility and to attract people into the communist party, which would have personified all the best qualities of humankind.

This phrase 'the withering away of the state', together with 'the contradiction of capitalism', were by far the most common source of sardonic jokes with which the communist comrades everywhere indicated they were not lost to sanity. "Most important, in this ideology the livings were to be sacrificed for the unborn. The livings were objects, like Mortar and bricks, lumber and nails, to be used, manipulated, piled on each other, to create the new social structure. Personal interest and desires, pain and pleasures were of little moment, insignificant in the light of new world to be created."(*Hellen and Nekrich*) What was the belief that fueled Lessing and her dear comrades? Well, they were the same as those of communists or near- communists everywhere, not just the hectic fancies of a hotchpotch of young lunatics thrown together by war in Africa. Anna in The Golden Notebook says that that they believed everything will be good but at the core of the heart they knew it won't. "Three of Michael's friends hanged in Prague……Party should frame and hang innocent people; and that these three had perhaps got themselves, without meaning to, into 'objectively' anti-revolutionary position." (*GN 155*)

According to Lessing the communist believed that there would never again be nationalist wars or religious wars. Nationalism would become a thing of the past. So was religion. A common thinking than prevailed that the world would never have religious war or a nationalist war again.

"Communist took it for granted that when the working class- or the blacks or any other disadvantaged people- took power, they would be inspired by only the purest and most disinterested ideals of all the absurd thing we believed this was probably the worst". (US, 282)

The most powerful idea, the one that fortified all the others, taken for granted, and even not discussed, was that capitalism was doomed, and had been voted out by History itself. It was believed that the dreadful was the creation of capitalism: capitalism brought war, socialism was characteristically peaceful. Capitalism had generated the previous wars, the great Depressions in Britain, Europe and America. The left club was formed by most of the people who had seen the evil side of Capitalism in The Great Depression. Capitalism was a killer and that was all that could have been said about it.

Anyone connected with business, of any kind was morally and ethically inferior. 'Businessman' was a term of scorn; Lessing pictures Richard in *The Golden Notebook* as crude and philistine barbarian. Lessing says that this 'attitude was reinforced by the English aristocratic contempt for 'trade', which had percolated down to levels far from its beginnings. Yet, 'business', trade,

capitalism in short, was, in our canon, at times necessary and good. I do not remember that we made any attempt to reconcile, or even discuss, these 'contradiction.' (US, 283)

The dogma was failing in more than one way. The ideas that had held the communist for so long seemed withering away with the tide of time. The proverbs 'the other man's pasture always appears greener' but when we really come close to it then we see the flaw in it. It can be said that a closer look of anything is required to have better understanding of it. Many a times we get carried away by the things which appear lovely from a distance but once we are involved with it then we realize that this is not what we exactly were looking for. Same can be said about any faith or religion. To what is the height of the level of obsession from where we will return- but what if the idea fails us and we have no limit of going ahead-obviously there will be break down and death? Because for their whole life they have done nothing but believe what was being said to them and ultimately these belief be-fails them. It appears as if there is no cause for life. This transformation may sometimes take months and years to come upon and sometimes it may bring the change overnight. Lessing says that if a person takes on a faith-political or religious- surrendering individuality in an inner act of submission to authority, then how long does it take to regain emotional autonomy? There must be some psychological law that determines this, which has nothing or little to do with reason, with the natural lever of a person. Lessing said that in her case it took years to shed it all, and shewas not committed with all of herself, as some people she knew were.

According to Lessing many people have gone through the process, first devout communist, then adjustments to various degrees of doubt, described by Arthur Koestler as "coin dropping one by one out of your pocket' (that, coins equated with ideas), then sadness or depression, then loss of faith.(US, 284)

This can take a long time. But why does it? There are people-but that goes with a certain kind of personality – who have sudden reverse conversion, shedding communist ideas (perhaps the right word is emotions) over night they are few. Most dawdled and drifted out of communism, out of 'the party'. For some people this was not painful. "It was not for me. What I suffered from mostly was fear of epithets like 'turn coat' and 'renegade' –a powerful weapon indeed. But I was never committed with all of myself to Communism. I know this by comparing myself with some who were. The tragic figures were those

very poor boys and girls who found in communism a hope, a way of life, a family, a university - a future'. (US, 284)

Some came from poor families of London's East, and joined the communist league. For them communism was everything that was best in life. Some died. Some had serious breakdown. They were- not really – never the same again. More influential in the long run than their entire attitude, some defined and debated others implicit, was something persuasive that revolution, which remained till the break of Soviet Union as an idea, as the great exemplar. A generation, two, three, in the west, had observed an attitude towards the Soviet Union which seemed able to survive any numbers of 'revelations'.

A new formula was taking over the people in 1917that the writer must write about social injustice. It became socialist realism. Lessing says, "Anyone who had the misfortune to read through a lot of that stuff, which I did in London early in the fifties for a Communist publisher, knows that socialist realism created novels written in a language as dead as the books that are a product of academia. Why? Writers know instinctively that a recipe for writing dead boos is to write because you ought. This is because you are writing out of a different area of your mind. (*Lessing*)

Soviet Union's invasion of Afghanistan often referred to as Soviet Union's 'Vietnam war', led to increased public dissatisfaction with the communist regime. 'Also, the Chernobyl disaster in 1986 added native force to Gorbachev's 'glasnost' and 'perestroika', which eventually spiraled out of control and caused the Soviet system to collapse' This phenomenon, the long lasting, the pervasive myth of the Soviet Union's role as beacon to all humankind, can very well be studied in the story of the Soviet invasion of Afghanistan and media attitudes to it.

Lessing's *Under My Skin* is most direct of all her works. It reveals almost everything that a historian or a scholar would want to know from the author, about the time he/she has lived through. The level of communication is at par with the best (so vivid) that the reader feels as if he/she is sitting face to face with the writer, where she is opening every aspect of her life word by word. One would despise oneself for missing a single word from this book.

For a brief time, Lessing imagined she could have the best of fate, when she joined the Communist Party in Rhodesia, and again in London. She had been inspired, she later wrote, by the idealism of the mid-20th century and by being around people, who read everything, and who did not think it remarkable to read.

Even the central feature of *The Golden Notebook* is the changing course of Anna's political outlook which begins in Rhodesia. Her abhorrence of the "color bar"—the racist policies of white European colonists towards blacks—in southern Africa and her observations of the poverty of the workers steered her towards Communism. As it turns out, the British Communists with whom she associates are a muddled and disorganized group, inveterate liars and prevaricators with utopian delusions; but Anna's eventual decision to leave them arises more from her disenchantment with their attitude that art should be used only for political purposes and not to express personal ideas or emotions. This is anathema to a creative writer such as Anna, as it should be; *The Golden Notebook* is Lessing's defiant response to that dictum.

The Golden Notebook is also a product of Lessing's disillusionment with Communism. She confronts the splintering of humanism into a plethora of competing discourse.Lessing portrays the individual either as an isolated monarch unable to relate to others or as a social being that lacks uniqueness.' (*Dominic*)

Both the portrayal tries to balance the problem faced by the writers. Lessing repeatedly claimed that *The Golden Notebook's* structure and themes were meant to comment on the impossibility of telling the truth in realism. There is direct effect of loss of faith in the novel. Anna bemoans the party's decision to view its intellectuals as enemy and to excute them. The whole tone of the section is reflective of the atmosphere in the communist circle in the late fifties when thousands of party workers were hanged as 'traitor to communism.' (*Celine*)

Majorty of the party members were dissatisfied and were disillusioned by the activities of the party, but most of them remained impassive to respond.

The novel exhibits three conflicts: the loss of faith in Communism, the alienation of the individual from herself and from others, and the problem of the writing in the post war period. 'The collapse of the world ethics has cut the ground from beneath her feet. The Golden Notebook is in fact an account of its central protagonists' realization that truth and fiction are not polar opposites and that although art cannot reflect reality, it can evoke it.' (*Dominic*)Lessing in her autobiography says, "I was a Communist for perhaps two years, in Southern Rhodesia, from 1942 to 1944, but whether this is organizationally true is debatable. I joined the Communist Party in, I think, 1951, in London, for reasons which I still don't fully understand, but did not go to meeting and was already a 'dissident', though the word had not been invented." (*UMS,*

275)This probably gives us enough clues that she was disillusioned with the party before she joined as a Communist member in London.

''There are certain types of people who are political out of a kind of religious reason. I think it's fairly common among socialists: They are, in fact, God-seekers, looking for the kingdom of God on earth. A lot of religious reformers have been like that, too. It's the same psychological set, trying to abolish the present in favor of some better future - always taking it for granted that there is a better future. If you don't believe in heaven, then you believe in socialism. When I was in my real Communist phase, I and the people around me really believed - but, of course, this makes us certifiable - that something like 10 years after World War II, the world would be Communist and perfect." (*Hazelton*)

Lessing in her autobiography says, 'now a different and deadly disbelief afflicts us: we are not intelligent enough-the human race-to make a new world or even prevents the old one from being destroyed. This is a continuation of that old cynicism, the 'what can you expect?' which was the other side of our unashamedly naïve dreams….' (*UMS, 313*)

Work Cited

E, Dr.Celine. "*The Golden Notebook*: a study of alienation and unification."*Indian Journal of Postcolonial Literatures 3*- Jan-Dec.2002.p. 28. Print

Frick, Thomas. An Interview. Doris Lessing, The Art of Fiction No. 102.Issue 106, Spring 1988. Web. Friday 23 March. 2018.

Hazelton, Lesley. "Doris Lessing on Feminism, Communism And 'Space Fiction'." *Late City Final Edition Section 6*.Column 1.Magazine Desk. Sunday 25 July. 1982. p. 21.Print

Hellen and Nekrich.'A paraphrase of utopia in power.' (explorers-foundation.org/glyphery/109.html). web.Np.

Dominic, K.V. "Doris Lessing and *The Golden Notebook*." *Indian Journal of Postcolonial Literature*. July-Dec. 2007. 136-138. Print

Lessing, Doris. *The Four Gated City* [1969] (Hammersmith, London: Flamingo Modern Classic, 1993. Print.

—*Under My Skins*. Vol. I. Hammersmith, London: Flamingo, 1995. Print.

—"Unexamined Mental Attitude Left Behind by Communism." Partisan Review Press. Published 1994. Print.

Omprakash Valmiki's *Joothan :* A Cultural Study of a Dalit's Life

–Dr. Dhanesh M. Bartwal*

THDC Institute of Hydropower
Engineering and Technology, Tehri Garhwal

The objective of every literature is not only to highlight the social issues but to upgrade the condition of society through the awakening of consciousness. Every piece of literature is based on a certain social issue from the contemporary society which assists human beings' conscience to eradicate the evils of society, and create a healthy environment for everyone to get a quality life with some hope and aspiration. The legendary creations of literature with a unique aspect leave a deep impact in the minds of the people for a long time. Indian literature, like other country's literature, is also having such type of authors who create creations in their respective vernacular languages and attract the perception of every class reader through the opted aspect for their writings. Some prominent Indian literary writers, like Bankim Chandra got fame for his romances in the imagination of Scott; Rabindranath Tagore wrote about upper-class gentry of Bengal; Sarat Chandra for middle-class life; and Munshi Premchand presented the condition of Indian peasants and humble workers. They selected their mother tongue as the medium of expression for their writings. These writers attract worldwide attention after translating their writings into other languages.

Dalit literature, which has come in shape at the very first Dalit literature conference accomplished in Bombay in 1958, is one the most important literary movement in the history of Indian literature which had emerged after the independence of India with the aim to promote the spirit of equality, and try to merge those weakest sections of the society with the main stream of society from where they could get their rights and honours. It got worldwide recognition after establishing an organisation of 'Dalit Panthers', which was influenced by "Black Panthers who were engaged in a militant struggle for African-Americans' rights in the United States of America" (Mukherjee, xii), by the Marathi writers cum activists in 1972. Like 'Black Panthers', the aim of this literary movement was to protect the rights of human being and condemn any kind of exploitation and discrimination which is deliberately imposed on the weakest section of society on the basis of class, caste, race, sex, and occupation by the higher

authority. The term 'Dalit' is derived from 'Sanskrit' language word '*dal*' which means to be crushed, grinned, oppressed as well as destroyed, and it is used for such kind of sections of the Indian society which are in the margin of the social stratifications. These people are known as Schedule Castes, Schedule Tribes, and Other Backward Classes in modern Indian administrative perspective. The formation of the term Dalit can be easily understood by the complex *Vedantist* kind of caste system that divides the Hindu society into four categories, *Brahmin*, *Kshatriya*, *Vaishya*, and *Shudra*, on the basis of castes. These four categories are further divided into numeral sections based on *jati*, *upjati* or cased based schism. Following *sukta* or verse of *Rig Veda* describes the supremacy and birth of a particular caste:

Brahmanoasya mukhmansit,

Bahu Rajnyah kritah,

Uru tadasyayad Vaishyah,

Padabhyam shudroajayat. (Prasad and Gaijan, 01)

The meaning of above *sukta* discloses that the Lord Brahma finds a distinctive place in Hindu society according to Hindu mythologies because He is considered as the Lord of creation, and the whole lively as well as this charismatic world is the outcome of His creation. The *sukta*, moreover,depicts that a particular caste has been originated from a specific body part of the Lord as *Brahmins* were born from the face, *Kshatriya* from the arms, *Vaishya* from the thighs, and *Shudra* from the feet of the Lord. In the hierarchical caste structure, *Brahmins* find the first place who is "performers of rituals and keepers of sacred texts, the *Vedas*, the *Smritis* and the *Puranas*", second place for *Kshatriya* who is "rulers and warriors, patronized the *Brahmins* and commissioned the rituals, including the *yagna* rituals of animal sacrifices and gifts to *Brahmins*", the *Vaishyas* gets third place who is "the cultivators and traders", and the last place, fourth, for the *Shudras* who is "servitors and performers of menial tasks" (Mukherjee, xv) like sweeping the streets, disposing the dead animal carcasses, and removing the human excreta. This caste always has been victimised by the anger and fury of the three higher castes, and do not have the privilege to perform ritual works. The behaviour of higher castes becomes worse for the lowest *jatis* and *upjatis*.

The lowest caste category Shudras, its *jati* and *upjati*,has been subjected to extreme injustice, inhumanity, humiliation, exploitation and myriad sufferings since the stratification of Hindu society into numerous sections and sub-sections. The movement of Dalit literature has been started by those literary writers who belong to the lowest caste of society and witness of the time immemorial

victimisation since their childhood. This movement condemns to that social system which is merely based on the hollowness of the caste and snatches away the basic right, to live liberated, from the lowest caste of society. The chief motive of this movement is to protrude these people from their suppressed plight and give a loud voice to them to break their voiceless Dalit position so that they can breathe the fresh air in social, political and cultural environment. Eminent Dalit short story author Baburao Bagul exhibits the worth of Dalit literature, "Dalit literature is not a literature of Vengeance. Dalit Sahitya is not a literature which spreads hatred. Dalit Sahitya first promotes man's greatness and man's freedom and for that reason it is an historic necessity." (Bagul, 56-57)

There are number of writers in dalit literature who portray the affliction and struggle of untouchables with the different hues of sympathy and humanity. N.S. Suryavanshi's *Things I Never Imagined* (1975), Daya Pawar's *Baluta* (1978), Narendra Jadhav's *Outcaste: A Memoir* (2003), Bama's *Karukku* (1992), Vasant Moon's *Growing up Untouchable in India* (2001), Sharankumar Limbale's *The Outcaste* (2003), Omprakash Valmiki's *Joothan: A Dalit's Life* (2003), Aravind Malagatti's *Government Brahmana* (2007), Baby Kamble's *Prison We Broke* (2008), and Urmila Pawar's *The Weave of My Life* (2008) are the best examples of prominent writers with their notable dalit autobiographies which reveal the pain and frustration of untouchables and shakes the consciousness of every class and caste reader through the torments of untouchables which they are facing since their birth. The aim of present paper is to trace experiences of Omprakash Valmiki (June 30, 1950-November 17, 2013), a dalit writer, through his celebrated autobiography *Joothan: A Dalit's Life*, translated from Hindi to English by Arun Prabha Mukherjee,and make an effort to search the impact of dalit caste in his life, the social injustices, and his own consistent efforts to make his individual identity in the modern world.

Omprakash Valmiki's *Joothan: A Dalit's Life*, considered as a milestone in Dalit literature, is an account of his unpleasant experiences, tyrannies and struggles which he faces from his birth to nurturing, from every phase and place of his life which make him realise his untouchable or dalit identity. He randomly paints his life's experiences in the autobiography which are connected to each other through the dalit's sensibility and its consciousness. The term 'Joothan', literary meaning is scraps left in its master's plate after taking his meal destined for garbage or for the pets, reveals the deplorable condition of dalit caste whose life is based on the mercy of higher caste people and has been compelled to accept *joothan* for their livelihood for previous centuries.

The author's detailed illustrations regarding collecting, preserving and eating *joothan* highlight the starving condition of *Bhangi* community. Martin Macwan has divided it into three classes, the first is "a food that which is fresh and not half-eaten; second that which is fresh but spoiled by eating, especially children's leftover; and third, stale food left from prepared earlier in the day." (Franco, 261) The very autobiography of Valmiki not only exhibits his painful social discrimination experiences in different parts of India like Barla, Dehradun, Ambernath, and Chandrapur in Maharashtra but it highlights the unheard voice of whole dalit caste who faces a lot of exploitation, humiliation and oppression in every step of life due to the hegemonic power.

The autobiography opens with Valmiki's compassionate explanation about the poor social condition of his *Chuhra* community, through the filthy, unhygienic and not properly ventilated atmosphere of the residing colony. The locations of muddy houses of his community are "not only apart from the upper caste Hindu settlement; they are actually outside the boundary of the village." (Limbale, 2) The unhealthy and decaying odour, due to going out for latrine in the open space by the inhabiting people of the colony, the roaming of pets in filthy lanes, poor drainage and heap of animals' dung, makes the atmosphere of the colony unhygienic and germ-infested which leads life taking diseases in the colony. Valmiki writes about it, "There was much strewn everywhere. The stench was so overpowering that one would choke within a minute. The pigs wandering in a narrow lane, naked children, dogs, daily fights, this was the environment of my childhood." (*Joothan*, 01)

Constitution of India gives the right to equality to every citizen of India through which every citizen, in any religion, caste and class, is equal and everyone has the equal rights. Even it opens the door of free and quality education for every child. But dalit children are restricted to get admission in school and somehow, if they get admission, they face different types of discrimination in their school through the domination of higher caste. Valmiki exhibits the hardships of his community for getting admission in the school through his sufferings. Valmiki's illiterate father, Chotan, wished to facilitate his son with proper education because the family of the writer believed that education is the only medium through which his caste could be improved and rehabilitated. Valmiki gets the admission in a school after the frequent visits and requests of his father, and with the help of Master Har Phool Singh. But instead of learning, Valmiki faces a lot of discriminations there. He used to "sit away from the other in the class, that too on the floor" and sometimes he "would have to sit away behind everybody, right near the door. And the letters on the board from there seemed faded." (*Joothan*, 2-3) He had to wait for other person's, who

belonged to higher caste, mercy for getting water to quenched his thirst because he had not have privilege to take water directly from the pot and other sources. Valmiki further explains the account of discrimination when he was forced by his teacher to sweep the school and its huge compartment instead of attending the classes which he was doing for three days until he was caught by his father. It is not an easy task for a dalit to raise his voice against any injustice in the chauvinistic society of higher castes. But the writer's father takes a bold step against the discrimination which his son was enduring in the school. Valmiki gets influenced by his father's intrepid action and remembers it rest of his life, as a lesson, that not to give up in front of any difficulties and fearlessly raise the voice against every injustice and discrimination. He displays his father's fury against this injustice,

Pitaji snatched the broom from my hand and threw it away. His eyes were blazing. Pitaji who was always taut as a bowstring in front of others was so angry that his dense moustache was fluttering. He began to scream, 'Who is the teacher, that progeny of Dronacharya, who forces my son to sweep?'(6)

The writer depicts another exemplary action of boldness of his mother in a big function of the village. This episode is directly related to the title of the autobiography, and left a deep impact on child Valmiki's mind. There was an awkward custom in the Writer's village, Barla, in which the people of *Chuhra* community used to render their manual services in any big functions or rituals like marriage, and in lieu of these they received the remaining *joothan* from the plates of the guests in their respective baskets as a reward of their services. They did not have the privilege to get the fresh food directly from the kitchen. Once in a function Valmiki's mother asked the head of the family, Mr. Sukhdev Singh Tyagi, to get some more food for her hungry children but he said in abusive words, "You are taking a basketful of *joothan*. And on the top of that you want food for your children. Don't forget your place, Chuhri. Pick up your basket and get going." (11) These words pierced Valmiki's heart like a sharp dart, and made him annoyed till the last breath of his life. Like a lioness his mother made vacant her basket in front of Sukhdev Singh Tyagi and roared in her rage, "Pick it up and put it inside your home. Feed to the *baratis* tomorrow morning." (11) She left the door of Sukhdev Singh Tyagi in her full pace and never turned up again in her life. This action is the outcome of suppressed revolt of *Chuhras'* against Tyagi's hegemonic power which exploits and humiliates them in every step of life.

Apart from these people, who did not miss a chance to humiliate, physically and mentally to Valmiki, there were some people who always tried

to motivate him and appreciate his works and qualities. The writer recalls through his past memories how his pals like Sukkhan Singh, Shravankumar Sharma, and Chandrapal Verma, from the hegemonic group, augmented his crushed moral as well as gave soothing to his wrenched emotions. Valmiki became monitor of the class when he got first rank in his section in the half-yearly examinations and his seat got shifted from the last row to the first row. This act increased his confidence and helped him to summon his energy in the pessimistic milieu. But there were some teachers like Omdutta Tyagi, Narendra Kumar Tyagi, Brijpal Singh, who were not supposed to be a teacher despite of their formal credentials and qualifications, and treated him badly for his small errors and never gave credit to him for his excellent performance so that he "would run away from the school" (3) and perform the menial jobs which his caste is doing for time immemorial. They kept out Valmiki from extracurricular activities of the school. Due to dirty intention of his own teacher he could not pass twelfth standard practical examination. He further recollects the difficulties of *Chuhras*, "During the examinations we could not drink water from the glass when thirsty. To drink water, we had to cup our hands. The peon would pour water from way high up, least our hands touch the glass." (16)

The author portrays the condition of hunger and hopelessness of his caste in the autobiography through the example of his family. It used to happen several times in the author's house when no one could be able to get the food for satisfying his hunger. Valmiki's mother boiled the begged small amount of rice in a big pot with mere water. Once the rice had boiled mother gave *mar* or rice water to the children for drink. This is the expression of extreme poverty and starvation that the children like *mar* more than milk because perhaps they have not got milk in their life and the value of *mar* was more than cow's milk for them. This situation became worst in the rainy season because people did not get labour in the agriculture, home and other sectors for earning the wages. Valmiki paints the gloomy picture of his colony during this season as,

The lanes filled up with mud, making walking very difficult. The mud was full of pig's excrement, which would begin to stink after that rain stopped. Flies and mosquitoes thrived like clouds of locusts. It became extremely difficult to go outside. Our arms and legs would get smeared with dirt. The feet became mangy. The space between the toes filled up with reddish sores. Once these sores started to itch, they would itch non-stop. (19)

The restlessness of the author regarding the poverty and his helplessness to get rid of this position reflects through his attentiveness in the lesson of

Dronacharya which was narrated by a teacher in eighth standard. The description was written by Vyasa in the epic *Mahabharata* based on Dronacharya's utmost poor condition who was not able to get milk and, therefore, used to dissolved water in the floor in order to feed his hungry son Ashwatthama. Valmiki was empathising with the poverty of Dronacharya during the description because he found no difference between the condition of the character and his own. In this regard he inquired to the teacher, "So Ashwatthama was given flour mixed in water instead of milk, but what about us who had to drink mar? How come we were never mentioned in any epic? Why didn't an epic poet ever write a word on our lives?" (23) These questions exhibited the consciousness of the author for the subject of equality. Instead of the answer, the teacher shouted, "Darkest *Kaliyug* has desended upon us so that an untouchable is daring to talk back …..... *Chuhre ke*, you dare compare yourself with Dronacharya…… Here, take this, I will write an epic on your body." (23) The teacher's inscribed epic through teak stick is still existed on the back of the writer which reminds him the feudalistic psyche of hegemonic power and frustration of hunger and hopelessness. The above incident reveals that *Dalit* does not find any place in the society as well as in the literature. And this discrimination neither finds place in any epic, sacred books nor any distinguished author present it through his creation.

There was an ironic post-marriage tradition in the *Chuhra* community in which bride and bridegroom had to move around from door to door to do *Salaam* or saluting in order to show their respect to dominant group and receive some gift like old clothes, vessels, grain, pulses and sometimes cash from them. But quite often newly married couple received abusive words like, "The stomachs of these Chuhras are never filled" (31) in place of the gift. Marriage is an auspicious ritual in every religion because it unfolds a new inning of life. It looks very awkward that the couple who should have begun their life with best wishes and benediction form the elders, get the gift of humiliation and embarrassment from the society. This act leads to a matter of great insult and mortification in the respect of a bride who has left her home with the expectations of new life and moves around door to door for *salaam*, and become the victim of anger and disregard of higher groups. Valmiki shows his agony against the tradition, "It is caste pride that is behind this centuries-old custom. The deep chasm that divides the society is made even deeper by this custom. It is a conspiracy to trap us in the whirlpool of inferiority." (33) This conspiracy has made by the higher group of society who has wanted to dominate the lowest group just for to expose their sovereignty over them. The author persuades his father not to pursue such kind of old tradition which

makes his community down. He breaks the fetters of this reprehensible tradition of *salaam* in his brother's wedding and desist his brother-in-law to follow it. He argues in this regard, "The bridegroom goes from door-to-door at his own wedding. It is awful. The bridegrooms of the higher castes don't have to do that…This bride will also go door-to-go after she arrives in Barla…" (32)

The author shifts from his native place to Dehradun for pursuing his XII standard. His lowest caste and failed certificate in XII standard examinations from Tyagi Inter College, Barla create hindrance to get admission in D.A.V. Inter College, Dehradun. After doing continuous visits, somehow, he gets admission in the college but he faces once again the castigation based on his caste and poverty which he had faced in his village. The students' comments on his dress which was neither properly tailored nor according to the fancy life of a city college led him in the gloominess of inferiority. He recalls the moment of frustration, "Many a time I felt that I wouldn't be able to complete my education. My Self-confidence had been badly shaken by my failure. I felt that life had nothing left for me." (67-68) But he summons his energy and gives direction it to the constructive way. He indulges himself in the studies which helped him to transform his feeble personality completely. He used to go to the library of Indresh Nagar, where he inhabited, and studied the literature of eminent authors. Chandrika Prasad Jigyasu's *Dr. Ambedkar: A Biography* and some other books on Dr. Amdedkar's life awakened his restless consciousness against fundamentalist Hindus and their narrow-mindedness. He acknowledges, "The deeper I was getting into this literature, the more articulate my rage became. I began to debate with my college friends, and put my doubts before my teachers. It was this literature that had given me courage." (72-73)

Valmiki joined Ordinance Factory Dehradun as an apprentice for making his identity and get rid of financial crisis. After completing one year training there, he further got selected for Ordinance Factory Training Institute, Khamaria in Jabalpur and stayed there for almost two years. In this place he came into contact with the students who were "deeply interested in contemporary issues and constantly argued about them" (85), and formed a theatre group after getting influenced by Marxist learning. He said about the Jabalpur, "Jabalpur changed me. My speech patterns changed. My manners also changed….. I took part in seminars and cultural functions….. I also began to develop my own views on literature. I was more attracted to social realism than to aestheticist and formalist types of writings." (85) From here he got selected in Ordinance Factory Training Institute Ambernath. He was pleased to see the scenic beauty of hostel which was situated the fascinating foot of Ambernath hill. The institute

had an enriched library having huge collection of classics, and Valmiki "read Pasternak, Hemingway, Victor Hugo, Pierre Louis, Tolstoy, Pearl Buck, Turgenev, Dostoevsky, Stevenson, Oscar Wilde, Romain Rolland and Emile Zola" and "the entire works of Rabindranath Tagore and Kalidasa." (87-88) He acquainted here with the prominent writers of Marathi Dalit literature like Daya Panwar, Namdev Dhasal, Raja Dhale, Gangadhar Pantavane, Baburao Bagul, Keshav Meshram, Narayan Surve, Vaman Nimbalkar and Yashwant Manohar who made him fascinated for Dalit literature and its sensibility. In between all these things, he encountered with the practice of untouchability, which was not expectable for him, in the metropolitan city like Bombay where people predict themselves modern and broad minded about social evils but, actually, they could not overcome from this practice. He reminds the incident, regarding Professor Kamble who belonged to untouchable caste and got tea in the different cup which did not resemble with others due to his caste, which proved the author's acceptations were wrong about the metropolitan cities' life. It shows that merely the mode of treatment for untouchables has been changed in different places but the condition has not change. He inscribes in the autobiography,

My village was divided along lines of touchability and untouchability. The situation was very bad in Dehradun and in Uttar Pradesh in general at this time. When I saw well-educated people in a metropolitan city like Bombay indulging in such behaviour, I felt a fountain of hot lava erupting within me. (95)

In his autobiography, Valmiki unfolds the memories of Chandrapur where he was transferred from Ambernath. He involved in Dalit Panther Movement and started a literary magazine named *Him Jharna* from here. He cites one incident which took place in 1984 in Malkapur of Amrawati district and exposes the dominance of *Savarnas* or upper caste. There was a chapter on Dr. Ambedkar in the class seventh and all the students removed that from their text book on the direction of a Brahmin teacher. The author wrote a poem entitled Vidrup Chehra in order to show his protest against this act.

The autobiography is not only an account of social discrimination and injustices experienced by Valmiki but it represents the pain and suffering of whole untouchables or Dalit community. The author's isolations, insults, ill-treatment from society, humiliation, and an object of ridicule for the people of upper castes in different places signify the alarming situation of lowest caste and class who are bearing this disgrace since their birth. It is lucidly expressed by the author that until the people recognised his caste they gave him sympathetic, respectful, positive and normal treatment but, once they identified his caste

their attitude suddenly got changed and they detached themselves from him. Like Valmiki there are so many Dalits who get encountered with such kind of weird attitude of society in their life. The author's efforts and optimistic attitude help him to understand the reasons for deplorable condition of his caste as well as the practice of untouchability. His fondness of books and literature gave him strength to raise voice against discriminations and injustices. Through his bitter experiences he wants to say that mere formation of the constitution is not the solution of abolishing the practice of untouchability in the Indian society but it is necessary to eradicate this practice from the psyche of every Indian's mind. This practice would be automatically vanished from the perspective of Indian society if, once, it will wipe out from the mind, behaviour, actions and attitude from every Indian. In this way every Indian, whichever caste and class he or she belongs, will breathe in the fresh air of twenty first century, and no one will be victim of any discriminations and injustices which would be based on domination of any caste or class.

Works Cited

Bagul, Baburao. "Dalit Sahitya: Man's Greatness, Man's Freedom." *Asmitadarsh*, Vol: 1, 1973

Franco, Fernando (ed.). *Journeys to Freedom: Dalit Narratives*. Calcutta: Samya, 2004

Limbale, Sharankumar. *Towards an Aesthetic of Dalit Literature*. Delhi: Orient Longman, 2007

Magdum, Ajit B. *Comparative Literature: Dalit Poetry and African Poetry*. Kanpur: Roli Book Distributers, 2009

Mukherjee, Arun Prabha. Introduction in Omprakash Valmiki's *Joothan: A Dalit's Life*, Translated from the Hindi by Arun Prabha Mukherjee, Kolkata: Samya Publication, 2010

Prasad, Amarnath and Gaijan, M.B. *Dalit Literature: a Critical Exploration*. New Delhi: Sarup and Sons, 2007

Valmiki, Omprakash. *Dalit Sahitya ka Saundaryashata*. New Delhi: Radhakrishnan, 2001

Valmiki, Omprakash. *Joothan: A Dalit's Life*, Translated from the Hindi by Arun Prabha Mukherjee, Kolkata: Samya Publication, 2010

✦✦✦